हृदय प्रदीप

(भाग-2)

विवेचनकार :-
पू.आ.रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

हृदय प्रदीप

भाग-2

–: हिन्दी-विवेचन :–

परम शासन प्रभावक, व्याख्यान वाचस्पति
दीक्षा युग प्रवर्तक पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा. के
तेजस्वी शिष्यरत्न बीसवीं सदी के महान् योगी, भावाचार्य तुल्य
पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के
कृपापात्र चरम शिष्यरत्न, मरुधररत्न, सरस्वती नंदन,
जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. एवं उनके शिष्यरत्न,
नवोदित लेखक **मुनिश्री स्थूलभद्रविजयजी म.सा.**

272

卐 **प्रकाशन** 卐

दिव्य सन्देश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor,
बे.व्यु. बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे,
डॉ.एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002.
Cell 84 84 84 84 51 (only whatsapp)

आवृत्ति : प्रथम • **मूल्य :** 260/- रुपये • **प्रतियाँ :** 750
विमोचन तिथि : 31-3-2026
विमोचन स्थल : प्रवचन मंडप, सुमेरपुर, (राज.)
• **Website :** Divyasandesh.online

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 4000/- रु.

• आप जैन धर्म के रहस्य, जैन इतिहास, जैन तत्त्वज्ञान, जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप **दिव्य संदेश प्रकाशन** मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 7 पुस्तकें दी जाएंगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तकें एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोड़कर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल,
चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं.,
4403, लोटन जाट गली,
पहाड़ी धीरज, सदर बाजार,
दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार,
मुंबई-400 002.M.9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क
Rs. 4000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन
C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डिंग,
विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी,
मुंबई-400 002. Mobile : 84 84 84 84 51 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक
प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा,
बैंगलोर-560 004. M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से

दीक्षा युग प्रवर्तक, महाराष्ट्र देशोद्धारक **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.** के तेजस्वी शिष्यरत्न, बीसवीं सदी के महान योगी, नमस्कार महामंत्र के बेजोड साधक चिंतक एक अनुप्रेक्षक, निःस्पृह शिरोमणि, प्रशांतमूर्ति, भावाचार्य तुल्य **पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य** के कृपापात्र चरम शिष्यरत्न गोडवाद के गौरव, मरुधर रत्न, जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के संयम सुवर्ण वर्ष में चैत्र मास की नवपद शाश्वत नवपद ओली के पवित्र दिनों में पूर्वाचार्य विरचित **'हृदय प्रदीप'** ग्रंथ के हिन्दी विवेचन को प्रकाशित करते हुए हमें अत्यंत ही हर्ष हो रहा है ।

पूज्य आचार्य भगवंत द्वारा हिन्दी भाषा में **आलेखित यह 266-267 वीं पुस्तक** है । अपने गुरुदेवश्री के शुभाशीर्वाद से प्रारंभ हुई उनकी यह साहित्य यात्रा आज भी निराबाध गति से चल रही है ।

हमें आत्म विश्वास है कि हिन्दी भाषा में प्रकाशित इस ग्रंथ का विवेचन खूब लोकप्रिय एवं लोकोपकारी बनेगा ।

लेखक की कलम से...

आज से ठीक 3 वर्ष पूर्व वि.सं. 2080 फाल्गुण मास में कामसेट में अंजन शलाका-प्रतिष्ठा का महोत्सव चल रहा था, उस समय बात ही बात में **मु.श्री हेमतिलकविजयजी म.सा.** ने विनती करते हुए कहा, **'हृदय प्रदीप'** ग्रंथ पर हिन्दी भाषा में विस्तृत विवेचन तैयार करने जैसा है ।

उनकी उस विनती को ध्यान में रखकर एक शुभ दिन मंगल घडी में इस ग्रंथ पर हिन्दी विवेचन का लेखन प्रारंभ किया । **अर्हद् दिव्य संदेश** के प्रत्येक अंक में 1-1 श्लोक पर यह विवेचन प्रकाशित होता रहा । अन्य अन्य कार्यों की व्यस्तता के कारण मेरे मार्गदर्शन के अनुसार सुविनीत शिष्य **मु.श्री स्थुलभद्रविजयजी म.सा.** ने इस कार्य को गति प्रदान की, जिसके फल स्वरुप आज यह ग्रंथ दो भागों में प्रकाशित हो रहा है ।

इस भवचक्र में राजा-महाराजा व अन्य पदों की प्राप्ति होना तो भी सुलभ है परंतु सांसारिक सुखों के प्रति वैराग्य भाव पैदा होना खूब कठिन है ।

रत्नत्रयी की आराधना-साधना का मूल वैराग्य भाव है । इसके अभाव में आत्मा को सम्यग्दर्शन की भी प्राप्ति नहीं होती है । सम्यग्दर्शन के अभाव में सम्यग्ज्ञान और सम्यग्चारित्र की प्राप्ति भी शक्य नहीं है ।

ठीक ही कहा है–**'समकित विण चारित्र नहीं और चारित्र विण नवि मुक्ति रे ।'** छह खंड के साम्राज्य का त्याग करना सुलभ है, यदि मन के भीतर वैराग्य की ज्योत प्रज्वलित हो जाय ।

संसार के त्याग से भी अधिक दुर्लभ है संसार से विरक्ति । विरक्ति के अभाव में किया गया संसार का त्याग भी संसार वृद्धि का कारण बन सकता है । त्याग के मूल में वैराग्य खूब जरुरी है । वैराग्य को पुष्ट करने का मुख्य साधन है–वैराग्य पोषक ग्रंथों का स्वाध्याय ।

–वैराग्य से दीक्षा अंगीकार करने के बाद भी उस वैराग्य की ज्योत को जीवन के अंतिम सयम तक टिकाए रखने के लिए वैराग्य पोषक ग्रंथों का स्वाध्याय, चिंतन-खूब जरुरी है ।

–भागवती-दीक्षा अंगीकार करने के बाद यदि वैराग्य की ज्योत बुझ जाती है तो उत्साह से ग्रहण किया संयम भी भारभूत लगता है, फिर संयम से विमुख आत्मा या तो पुनः गृह-आवास का स्वीकार कर देती है अथवा घसिट-घसिट कर अपने जीवन को पूर्ण करती है ।

–वैराग्य के बिना संयम जीवन भी शुष्क हो जाता है उन महान क्रियाओं में आनंद व उत्साह समाप्त हो जाता है ।

–देव दुर्लभ ऐसे महान संयम जीवन को प्राप्त कर अपने संयम के लाभ को खो न दे इस हेतु संयम में निरंतर वैराग्य पोषक ग्रंथों का स्वाध्याय व पठन-पाठन होना चाहिए ।

भूतकाल में हुए अनेक महापुरुषों ने वैराग्य पोषक ग्रंथों का सर्जन किया है ।

जिनमें प्राकृत भाषा में वैराग्य शतक, इन्द्रिय-पराजय शतक, संबोध सित्तरि आदि मुख्य है तो संस्कृत भाषा में शांत सुधारस, वैराग्य मंजरी, हृदय-प्रदीप आदि ग्रंथ मुख्य है । **प्राकृत-संस्कृत भाषा में विरचित उन ग्रंथों पर अनेक महापुरुषों ने टीकाओं की रचनाकर ग्रंथकार महर्षि के हृदयगत भावों को खोलने का प्रयास किया है ।**

किसी अज्ञात पूर्वाचार्य द्वारा विरचित **'हृदय-प्रदीप'** ग्रंथ पर बहुत ही कम टीकाएं उपलब्ध है ।

वर्तमान में श्वे .मू .जैन संघ का सबसे बडा दुर्भाग्य है कि आज श्रावक-श्राविका संघ में से संस्कृत-प्राकृत भाषा लुप्त-प्रायः हो गई है और इसी का यह कटु परिणाम है कि भूतकाल में अनेक पूर्वाचार्य महर्षियों ने सैकडों-हजारों संस्कृत-प्राकृत ग्रंथों का सर्जन किया होने पर भी भाषा बोध के अभाव के कारण वे सभी ग्रंथ **'भैंस के आगे भागवत'** जैसे हो गए है ।

उन अनमोल ग्रंथ के भावों से भावि पीढी भी लाभान्वित हो, उस लक्ष्य को ध्यान में रखकर उन ग्रंथों का प्रांतीय भाषाओं में विवेचन होना खूब जरुरी है ।

– **'हृदय-प्रदीप'** ग्रंथ पर गुजराती भाषा में अनेक विवेचन उपलब्ध हैं, परंतु हिन्दी भाषा में एक भी विवेचन उपलब्ध नहीं है ।

वात्सल्य के महासागर **स्व. पूज्यपाद गुरुदेव पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** की निरंतर बरस रही कृपा वृष्टि के फल स्वरुप ही यह विवेचन तैयार हुआ है, इसमें जो कुछ भी शुभ है, उसके यश के भागी तो वे ही है ।

छद्मस्थता वश ग्रंथकार के आशय के विरुद्ध कुछ भी आलेखन हुआ हो तो उसके लिए अंतःकरण से क्षमा याचना करता हूँ ।

मीठी माँ आराधना भवन
बाली,
जिला. पाली. (राज.)
दि. 02-02-2026

परमोपकारी परम गुरुदेव
अध्यात्मयोगी पूज्यपाद
पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य कृपाकांक्षी
आ. रत्नसेनसूरि म.सा.

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** द्वारा आलेखित हिन्दी साहित्य

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
1.	वात्सल्य के महासागर	2038	अध्यात्मयोगी पू. गुरुदेव का जीवन परिचय	बाली
2.	सामायिक सूत्र विवेचना	2039	सामायिक सूत्रों का विवेचन	
3.	चैत्यवंदन सूत्र विवेचना	2040	चैत्यवंदन के सूत्रों का विवेचन	
4.	आलोचना सूत्र विवेचना	2040	इच्छामिठामि आदि सूत्रों का विवेचन	
5.	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचन	2041	वंदित्तु सूत्र पर विस्तृत विवेचन	
6.	कर्मन् की गत न्यारी	2041	महाबल-मलयासुंदरी का चरित्र	पूना
7.	आनंदघन चौबीसी विवेचन	2041	पू.आनंदघनजी के 24 स्तवनों का विवेचन	विजयापूर
8.	मानवता तब महक उठेगी	2041	मार्गानुसारिता के 18 गुणों का विवेचन	
9.	मानवता के दीप जलाएं	2043	मार्गानुसारिता के 17 गुणों का विवेचन	
10.	जिंदगी जिंदादिली का नाम है	2044	पू.पादलिप्तसूरिजी आदि चरित्र	कैलाश नगर राज.
11.	चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	2044	'चेतन ज्ञान अजुवालिए' पर विवेचन	रानीगांव
12.	युवानो ! जागो	2045	धुम्रपान आदि पर विवेचन	रानीगांव
13.	शांत सुधारस-विवेचन भाग 1	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
14.	शांत सुधारस- विवेचन भाग 2	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
15.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	2045	लेखों का संग्रह	जयपुर
16.	मृत्यु की मंगल यात्रा	2046	'मृत्यु' विषयक पत्रों का संग्रह	सेवाडी
17.	जीवन की मंगल यात्रा	2046	जीवन की सफलता के उपाय	पिंडवाडा
18.	महाभारत और हमारी संस्कृति-1	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	जयपुर
19.	महाभारत और हमारी संस्कृति-2	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	पिंडवाडा
20.	तब चमक उठेगी युवा पीढी	2047	नव युवकों को मार्गदर्शन	पिंडवाडा
21.	The Light of Humanity	2047	मार्गानुसारिता के गुणों का वर्णन	उदयपुर
22.	अंखियाँ प्रभु दर्शन की प्यासी	2047	पू.यशो.वि. की चौबीसी पर विवेचन	शंखेश्वर
23.	युवा चेतना विशेषांक	2047	व्यसनादि पर लेखों का संग्रह	उदयपुर
24.	तब आंसू भी मोती बन जाते है	2047	सागरदत्त चरित्र	उदयपुर
25.	शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	2047	गुजराती वार्ताओं का संग्रह	
26.	युवा संदेश	2048	नवयुवकों को शुभ संदेश	पाटण
27.	रामायण में संस्कृति भाग 1	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	राजकोट
28.	रामायण में संस्कृति-भाग 2	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	जामनगर
29.	जीवन निर्माण विशेषांक	2049	सद्गुणोपासना संबंधी लेख	जामनगर
30.	श्रावक जीवन दर्शन	2049	श्राद्धविधि ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद	गिरधरनगर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
31.	The Message for the youth	2049	युवा संदेश का अंग्रेजी अनुवाद	गिरधरनगर
32.	यौवन सुरक्षा विशेषांक	2049	ब्रह्मचर्य विषयक लेखों का संग्रह	गिरधरनगर
33.	आनंद की शोध	2050	5 जाहिर प्रवचन	गिरधरनगर
34.	आग और पानी भाग-1	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
35.	आग और पानी भाग-2	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
36.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	2068	शत्रुंजय महिमा एवं यात्रा विधि	पालीताणा
37.	सवाल आपके, जवाब हमारे	2050	जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तरी	माटुंगा
38.	जैन विज्ञान	2050	नव तत्व के पदार्थों पर विवेचन	थाणा
39.	आहार विज्ञान विशेषांक	2050	जैन आहार पद्धति	थाणा
40.	How to live true life ?	2050	जीवन की मंगल यात्रा का अनुवाद	थाणा
41.	भक्ति से मुक्ति	2050	प्रभु भक्ति के स्तवन आदि	थाणा
42.	आओ ! प्रतिक्रमण करे	2051	राई व देवसी आदि प्रतिक्रमण	थाणा
43.	प्रिय कहानियाँ	2051	कहानियों का संग्रह	मुलुंड
44.	अध्यात्म योगी पूज्य गुरुदेव	2051	पं. श्री के जीवन विषयक लेख	भायखला
45.	आओ ! श्रावक बने	2051	श्रावक के 12 व्रतों का निर्देश	कल्याण
46.	गौतम स्वामी-जंबुस्वामी	2051	महापुरुषों का विस्तृत जीवन	कल्याण
47.	जैनाचार विशेषांक	2051	जैन आचार विषयक लेख	कल्याण
48.	हंसश्राद्धव्रत दीपिका (गु.)	2051	श्रावक के 12 व्रत	कल्याण
49.	कर्म को नहीं शर्म	2052	भीमसेन चरित्र	कुर्ला
50.	मनोहर कहानियाँ	2052	प्रेरणादायी 90 कहानियाँ	कुर्ला
51.	मृत्यु-महोत्सव	2052	मृत्यु पर विवेचन	दादर
52.	नवलाख नवकार	2052	नवकार	
53.	सफलता की सीढियाँ	2052	श्रावक के 21 गुणों पर विवेचन	दादर
54.	श्रमणाचार विशेषांक	2052	साधु जीवनचर्या विषयक	
55.	विविध देववंदन	2052	दीपावली आदि देववंदन	भायंदर
56.	नवपद-प्रवचन	2052	नवपद के प्रवचन	चीराबाजार
57.	ऐतिहासिक कहानियाँ	2052	भरत आदि 19 महापुरुष	सायन
58.	तेजस्वी सितारे	2053	स्थूलभद्र आदि छ महापुरुष	सायन
59.	सन्नारी विशेषांक	2053	सन्नारी विषयक लेख संग्रह	सायन
60.	मिच्छामि दुक्कडम्	2053	क्षमापना पर उपदेश	सायन
61.	Panch Pratikraman Sootra	2053	पंच प्रतिक्रमण मूल सूत्र	सायन
62.	जीवन ने जीवी तूं जाण (गुज.)	2053	श्रद्धांजलि लेखों का संग्रह	सायन
63.	आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	2053	विविध वार्ताओं का संग्रह	सायन
64.	अमृत की बुंदे	2054	प्रेरणादायी उपदेश	बांद्रा (ई)
65.	श्रीपाल-मयणा	2054	श्रीपाल और मयणा सुंदरी	थाणा

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
66.	शंका और समाधान-भाग-1	2054	1200 प्रश्नों के जवाब	थाणा
67.	प्रवचन धारा	2054	पांच जाहिर प्रवचन	धूले
68.	राजस्थान तीर्थ विशेषांक	2054	राजस्थान के तीर्थ	धूले
69.	क्षमापना	2054	क्षमापना संबंधी चिंतन	धूले
70.	भगवान महावीर	2054	महावीर प्रभु के 27 भव	धूले
71.	आओ ! पौषध करें	2055	पौषध की विधि	चिंचवड
72.	प्रवचन मोती	2054	उपदेशात्मक वचन	चिंचवड
73.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	2055	चैत्यवंदन-स्तुति संग्रह	चिंचवड
74.	श्रावक कर्तव्य भाग 1	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
75.	श्रावक कर्तव्य भाग 2	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
76.	कर्म नचाए नाच	2056	महासती तरंगवती चरित्र	सोलापूर
77.	माता-पिता	2056	संतानों के कर्तव्य	सोलापूर
78.	प्रवचन-रत्न	2056	प्रवचनों का आंशिक अवतरण	पूना
79.	आओ ! तत्वज्ञान सीखे !	2056	जैन तत्वज्ञान के रहस्य	चिंचवड स्टे.
80.	क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	2056	क्रोध के कटु परिणाम	चिंचवड स्टे.
81.	जिन शासन के ज्योतिर्धर	2057	प्रभावक महापुरुष	चिंचवड गांव
82.	आहार क्यों और कैसे ?	2057	आहार संबंधी जानकारी	दहीसर
83.	महावीर प्रभु का सचित्र जीवन	2057	सचित्र संपूर्ण जीवन	थाणा
84.	प्रभु पूजन सुख संपदा	2057	प्रभु दर्शन पूजन विधि	भिवंडी
85.	भाव श्रावक	2057	भाव श्रावक के 17 गुणों पर विवेचन	भायंदर
86.	महान् ज्योतिर्धर	2057	रामचंद्रसूरीश्वरजी का जीवन	भायंदर
87.	संतोषी नर सदा सुखी	2058	लोभ के कटु परिणाम	गोरेगांव
88.	आओ ! पूजा पढाए !	2058	चोसठ प्रकारी पूजाओं के अर्थ	गोरेगांव
89.	शत्रुंजय की गौरव गाथा	2058	शत्रुंजय के 16 उद्धार	भायंदर
90.	चिंतन मोती	2058	विविध चिंतनों का संग्रह	टिंबर मार्केट-पूना
91.	प्रेरक कहानियाँ	2058	प्रेरणादायी कहानियाँ व नाटक	पूना
92.	आईवडिलांचे उपकार	2058	'माता-पिता' का मराठी अनुवाद	पूना
93.	महासतियों का जीवन संदेश	2059	सुलसा आदि के चरित्र	देहुरोड
94.	आनंदघनजी पद विवेचन	2059	आनंदघनजी के 18 पदों पर विवेचन	पूना
95.	Duties towards Parents	2059	माता-पिता का अंग्रेजी	पूना
96.	चौदह गुणस्थानक	2059	'गुणस्थानक क्रमारोह विवेचन	येरवडा
97.	पर्युषण अष्टाह्निक प्रवचन	2059	पर्युषणपर्व के प्रवचन	येरवडा
98.	मधुर कहानियाँ	2059	कुमारपाल आदि का चरित्र	येरवडा
99.	पारस प्यारो लागे	2060	पार्श्व प्रभु के 10 भव आदि	येरवडा
100.	बीसवीं सदी के महानयोगी	2060	पूं.पं.श्री भद्रंकरविजयजी स्मृति ग्रंथ	दीपक ज्योतिटॉवर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
101.	अमरवाणी	2060	पूं.पं. श्री भद्रंकरविजयजी म. के प्रेरक प्रवचन	दीपक ज्योतिटॉवर
102.	कर्म विज्ञान	2060	'कर्म विपाक' पर विवेचन	दीपक ज्योतिटॉवर
103.	प्रवचन के बिखरे फूल	2061	प्रवचन के सारभूत अवतरण	बोरीवली (ई)
104.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	2061	कल्पसूत्र पर दिए प्रवचन	थाणा
105.	आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र	2061	प्रभु के भवों का वर्णन	थाणा
106.	ब्रह्मचर्य	2061	ब्रह्मचर्य पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
107.	भाव सामायिक	2061	सामायिक सूत्रों पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
108.	राग म्हणजे आग	2061	'क्रोध आबाद' का मराठी	श्रीपालनगर, मुंबई
109.	आओ ! उपधान-पौषध करे	2062	उपधान संबंधी विस्तृत जानकारी	भिवंडी
110.	प्रभो ! मन मंदिर पधारो	2062	प्रभु भक्ति विषयक चिंतन	आदीश्वर धाम
111.	सरस कहानियाँ	2062	नल-दमयंती आदि कहानियाँ	परेल मुंबई
112.	महावीर वाणी	2062	आगमोक्त सूक्तियों पर विवेचन	कर्जत
113.	सद्गुरु उपासना	2062	सद्गुरु का स्वरुप	कर्जत
114.	चिंतनरत्न	2062	विविध चिंतन	कर्जत
115.	जैनपर्व प्रवचन	2063	कार्तिक पूनम आदि पर्वों के प्रवचन	कर्जत
116.	नींव के पत्थर	2063	अध्यात्म प्राप्ति के 15 गुण	आदीश्वर धाम
117.	विखुरलेले प्रवचन मोती	2063	प्रवचन के बिखरे फूल का मराठी	वणी
118.	शंका समाधान भाग-2	2063	1200 प्रश्नों के जवाब	आदीश्वर धाम
119.	श्रमण शिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी	2063	पूज्यश्री का संक्षिप्त जीवन	भायंदर
120.	भाव चैत्यवंदन	2063	जग चिंतामणि से सूत्रों पर विवेचन	भिवंडी
121.	Youth will shine then	2063	'तब चमक उठेगी' का अंग्रेजी अनुवाद	भिवंडी
122.	नव तत्त्व विवेचन	2063	'नवतत्त्व' पर विवेचन	भिवंडी
123.	जीव विचार विवेचन	2063	'जीव विचार' पर विवेचन	भिवंडी
124.	भव आलोचना	2064	श्रावक जीवन संबंधी आलोचना स्थल	
125.	विविध पूजाएं	2064	नवपद, आदि पूजाओं का भावानुवाद	आदीश्वर धाम
126.	गुणवान बनो	2064	18 पाप स्थानकों पर विवेचन	महावीर धाम
127.	तीन भाष्य	2064	तीन भाष्यों का विवेचन	आदीश्वर धाम
128.	विविध तपमाला	2064	प्रचलित तपों की विधियां	डोंबिवली
129.	महान् चरित्र	2064	पेथडशा आदि का जीवन	कल्याण
130.	आओ ! भावयात्रा करे	2064	शत्रुंजय आदि भाव यात्राएं	कल्याण
131.	मंगल स्मरण	2064	नवस्मरण आदि संग्रह	कल्याण
132.	भाव प्रतिक्रमण भाग-1	2065	वंदित्तु तक हिन्दी विवेचन	विक्रोली
133.	भाव प्रतिक्रमण भाग-2	2065	आयरिय उवज्झाए से विवेचन	विक्रोली
134.	श्रीपालरास और जीवन	2065	श्रीपाल मयणा का रास एवं जीवन	थाणा
135.	दंडक विवेचन	2065	दंडक सूत्र पर हिन्दी विवेचन	कुर्ला

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
136.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें	2065	संवत्सरी प्रतिक्रमण विधि	भिवंडी
137.	सुखी जीवन की चाबियाँ	2066	मार्गानुसारिता के 35 गुण (कमलदर्शन)	मुंबई
138.	पाँच प्रवचन	2066	पाँच जाहिर प्रवचन	मोहना
139.	सज्झायों का स्वाध्याय	2066	सज्झायों का संग्रह	मोहना
140.	वैराग्य शतक	2066	वैराग्य पोषक विवेचन	मलाड
141.	गुणानुवाद	2066	10 आचार्यों का जीवन परिचय	रोहा
142.	सरल कहानियाँ	2066	प्रेरणादायी कथाएं	रोहा
143.	सुख की खोज	2066	सुख संबंधी चिंतन	रोहा
144.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-1	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-1	थाणा
145.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-2	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-2	थाणा
146.	आध्यात्मिक पत्र	2067	पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी म. के पत्र	थाणा
147.	शंका और समाधान भाग-3	2067	छोटे मोटे 750 प्रश्नों के जवाब	थाणा
148.	जीवन शणगार प्रवचन	2067	संस्कार शिबिर-रोहा के प्रवचन	धारावी
149.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-1	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
150.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-2	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
151.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-1	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
152.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-2	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
153.	ध्यान साधना	2068	ध्यान शतक-आराधना धाम	हालार
154.	श्रावक आचार दर्शक	2068	धर्म संग्रह का हिन्दी अनुवाद	राजकोट
155.	अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)	2068	नीव के पत्थर का मराठी अनुवाद	नासिक
156.	इन्द्रिय पराजय शतक	2068	वैराग्य वर्धक	पालीताणा
157.	जैन शब्द कोष	2068	शास्त्रिय शब्दों के अर्थ	पालीताणा
158.	नया दिन-नया संदेश	2069	तिथि अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
159.	तीर्थ यात्रा	2069	शत्रुंजय गिरनार तीर्थ महिमा	हस्तगिरि तीर्थ
160.	महामंत्र की साधना	2069	चिन्तन	पिन्डवाडा
161.	अजातशत्रु अणगार	2069	श्रद्धाजंली लेख	भद्रंकर नगर-लुणावा
162.	प्रेरक प्रसंग	2069	कहानियां	बाली
163.	The way of Metaphysical Life	2069	नीव के पत्थर का English अनुवाद	बाली
164.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-1	2070	प्राकृत प्रवेशिका	सेसली तीर्थ
165.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-2	2070	Guide Book	सेसली तीर्थ
166.	आओ ! भाव यात्रा करे ! भाग-2	2070	68 तीर्थ भावयात्रा	बेडा तीर्थ
167.	Pearls of Preaching	2070	प्रवचन मोती का अनुवाद	नाकोडा तीर्थ
168.	नवकार चिंतन	2070	चिंतन	उदयपूर
169.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-1	2070	63 दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
170.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-2	2070	63 प्रकार के दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
171.	परम तत्त्व की साधना भाग-1	2071	चिन्तन	कीर्ति स्थंभ घाणेराव
172.	रत्न संदेश भाग-1	2071	दैनिक सुविचार	बाली
173.	गागर मे सागर	2071	बाली तथा घाणेराव के प्रवचन अंश	पालीताणा
174.	रत्न संदेश भाग-2	2071	तारीख अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
175.	My Parents	2071	माता-पिता का English अनुवाद	पालीताणा
176.	श्रावकाचार प्रवचन-1	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
177.	श्रावकाचार प्रवचन-2	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
178.	परम तत्त्व की साधना भाग-2	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
179.	परम तत्त्व की साधना भाग-3	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
180.	बाली चातुर्मास विशेषांक	2069	बाली चातुर्मास	बाली
181.	उपधान स्मृति विशेषांक	2072	पालीताणा में उपधान	पालीताणा
182.	नवपद आराधना	2072	नवपद के 11 प्रवचन	लोढा धाम
183.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-1	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	गुंदेचा गार्डन
184.	हेमचंद्राचार्य और कुमारपाल	2072	जीवन चरित्र	डोंबिवली
185.	आईचे वात्सल्य	2072	माता-पिता का मराठी अनुवाद	नासिक
186.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-2	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	नासिक
187.	जैन-संघ व्यवस्था	2072	देव द्रव्य आदि की व्यवस्था	नासिक
188.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-1	2074	1 से 16 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
189.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-2	2074	17 से 24 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
190.	संस्मरण	2073	संयम जीवन के अनुभव	गोकाक
191.	संबोह सित्तरि	2073	वैराग्य का अमृतकुंभ	गोकाक
192.	विवेकी बनों !	2073	विवेक गुण पर विवेचन	राणे बेन्नुर
193.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-3	2073	तत्त्व चिंतन	बेंगलोर
194.	लघु संग्रहणी	2073	जैन भूगोल	बेंगलोर
195.	समाधि मृत्यु	2073	मृत्यु समय समाधि के उपाय	बेंगलोर
196.	दूसरा कर्मग्रंथ	2073	दूसरे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
197.	चौथा कर्मग्रंथ	2073	चौथे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
198.	आदर्श कहानियाँ	2074	प्रेरणादायी कहानियाँ	बेंगलोर
199.	प्रवचन वर्षा	2074	प्रवचन के बिंदु	सुशीलधाम
200.	अमृत रस का प्याला	2074	199 पुस्तकों का सार	बेंगलोर
201.	महान् योगी पुरुष	2074	पं. भद्रंकरविजयजी के जीवन प्रसंग	बेंगलोर
202.	बारह चक्रवर्ती	2074	बारह चक्रवर्तियों का जीवन	मैसूर
203.	प्रेरक प्रवचन	2074	प्रेरणादायी प्रवचन	मैसूर
204.	पाँचवाँ-कर्मग्रंथ	2075	कर्मग्रंथ का विवेचन	मैसूर
205.	छठा-कर्मग्रंथ	2074	हिन्दी में विवेचन	बेंगलोर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
206.	Celibacy	2074	ब्रह्मचर्य का अनुवाद	सेलम (T.N.)
207.	मंत्राधिराज प्रवचन सार	2074	पू.भद्रंकर वि. के प्रवचनांश	ईरोड (T.N.)
208.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	2075	साधु जीवन के सूत्रों पर विवेचन	कोयम्बतूर
209.	मोक्ष मार्ग के कदम	2075	मोक्ष मार्ग के 21 गुण	कोयम्बतूर
210.	शंका समाधान भाग-4	2075	मननीय प्रश्नों के जवाब	कोयम्बतूर
211.	व्यसन-मुक्ति	2076	सात व्यसन के अनर्थ	चैनइ
212.	गणधर-संवाद	2076	गौतम स्वामि आदि 11 गणधर प्रतिबोध कथा	चैनइ
213.	New Message for a New Day	2077	सुवाक्य संकलन (अंग्रेजी)	चैनइ
214.	चिंतन का अमृत-कुंभ	2077	पूज्यश्री का मार्मिक चिंतन	बेंगलोर
215.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव-बलदेव	2077	चरित्र ग्रंथ	बेंगलोर
216.	अचिंत्य चिंतामणि (भाग-1)	2077	नमस्कार महामंत्र की महिमा	बल्लारी (Kar.)
217.	अचिंत्य चिंतामणि (भाग-2)	2077	नमस्कार महामंत्र की महिमा	बल्लारी (Kar.)
218.	हार्दिक श्रद्धांजलि	2077	पंन्यासजी म.सा. के शिष्य प्रशिष्य आदि के जीवन चरित्र	बल्लारी (कर्णाटक)
219.	सुखी जीवन के Mile-Stone	2077	प्रवचन बिन्दू	बीजापूर(Kar.)
220.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा-1	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर(Kar.)
221.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा-2	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर(Kar.)
222.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा-3	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर(Kar.)
223.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा-4	2078	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर(Kar.)
224.	अर्हद् दिव्य-संदेश (दीक्षा-विशेषांक)	2078	संयम जीवन की महत्ता एवं मु. विमलपुण्यविजयजी की दीक्षा प्रसंग	इचलकरंजी (M.S.)
225.	'बेंगलोर' प्रवचन-मोती	2078	बेंगलोर में हुए प्रवचन	कराड (M.S.)
226.	श्री नमस्कार महामंत्र	2078	पू.पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	बोरीवली (ई)
227.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	2078	पू.पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	भायंदर (W)
228.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	2078	64 प्रकारी पूजा का विवेचन	भायंदर
229.	तत्त्वार्थ-सूत्र (भाग-1)	2078	तत्त्वार्थ सूत्र का हिन्दी विवेचन	भायंदर
230.	तत्त्वार्थ-सूत्र (भाग-2)	2078	तत्त्वार्थ सूत्र का हिन्दी विवेचन	भायंदर
231.	वर्धमान सामायिक साधना श्रेणी	2078	सामायिक विधि एवं श्रेणी	भायंदर
232.	वैराग्य-वाणी	2079	पू.आ.श्री रामचन्द्रसूरिजी के प्रवचन	भायंदर
233.	सम्यग्दर्शन का सूर्योदय	2079	समकित 67 बोल विवेचन	महावीर धाम
234.	जीवन झांकी	2079	मु. पुण्योदयविजयजी का परिचय	कामसेट
235.	मन के जीते जीत है	2079	मन पर चिंतन	थाणा
236.	नमस्कार मीमांसा	2079	नवकार चिंतन	भायंदर
237.	परमेष्ठि-नमस्कार	2079	नवकार चिंतन	निगडी
238.	धर्म बीज	2079	चार भावना चिंतन	निगडी

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन विक्रम सं.	विषय	विमोचन स्थल
239.	45 आगम परिचय	2079	आगम बोध	निगडी
240.	नित्य देव वंदन	2080	देव वंदन	लोढा धाम
241.	श्री भद्रंकर प्रश्नोत्तरी	2080	शंका समाधान	बडगांव-राज.
242.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तर	2080	शंका समाधान	बडगांव-राज.
243.	तीसरा कर्मग्रन्थ	2080	तीसरे कर्मग्रंथ का विवेचन	वीरवाडा-राज.
244.	कोयंबत्तुर-प्रवचन	2080	प्रवचन साहित्य	पोसालिया -राज.
245.	दक्षिण भारत प्रवचन	2080	प्रवचन साहित्य	पोसालिया-राज.
246.	पाण्डव-चरित्रम्	2080	जैन महाभारत	पोसालिया-राज.
247.	महावीर-प्रभु की अंतिम देशना	2080	उत्तराध्यय सूत्र के 36 अध्ययन	पोसालिया-राज.
248.	योग की आठ दृष्टियाँ	2080	योग की आठ दृष्टियों का वर्णन	पोसालिया-राज.
249.	साचा माणस बनीए ! (गुजराती)	2081	मार्गानुसारिता के 35 गुण	पोसालिया-राज.
250.	शुभ-संदेश	2081	365 संदेश	लुणावा-राज.
251.	सहनशील बनों (22 परीषह)	2081	22 परीषह विजय हेतु प्रेरणा	भोपाल सागर-राज.
252.	नवपद आराधना विधि	2081	विधि-विधान	बडगांव-राज.
253.	शत्रुंजय की भाव यात्रा	2081	शत्रुंजय महातीर्थ पर विस्तृत विवेचन	बडगांव-राज.
254.	नवकार-प्रवचन	2081	पू.पं. श्री भद्रंकरविजयजी के प्रवचन	भद्रंकर नगर-राज.
255.	10 श्रमण-धर्म	2081	10 यति धर्म पर विवेचन	उदयपुर-राज.
256.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासन-1	2081	संस्कृत-व्याकरण	उदयपुर-राज.
257.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासन-1	2081	संस्कृत-व्याकरण	उदयपुर-राज.
258.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासन-1	2081	संस्कृत-व्याकरण	उदयपुर-राज.
259.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासन-1	2081	संस्कृत-व्याकरण	उदयपुर-राज.
260.	समाधि की साधना	2082	अमृतवेल सज्झाय पर विवेचन	उदयपुर-राज.
261.	शंका-समाधान (भाग-5)	2082	628 प्रश्नों के उत्तर	सादडी-राज.
262.	प्रवचन का अमृत	2082	प्रवचन के सुवाक्य	घाणेराव-राज.
263.	उपधान तप एवं तीर्थ यात्रा विशेषांक	2082	उपधान प्रतिक्रियाएँ	दयालशा किल्ला
264.	पू.पं.जी महाराज के जीवन-प्रसंग	2082	पंन्यासजी म. के प्रेरक प्रसंग	बाली-राज.
265.	श्रमण हितशिक्षा	2082	श्रमणों का हितशिक्षा	भारुंदा-राज.
266.	अर्हद् दिव्य संदेश–वर्ष–1		ई.स्वी.2001 सन् के 12 अंको की File	
267.	अर्हद् दिव्य संदेश–वर्ष–2		ई.स्वी.2002 सन् के 12 अंको की File	
268.	अर्हद् दिव्य संदेश–वर्ष–3		ई.स्वी.2003 सन् के 12 अंको की File	
269.	अर्हद् दिव्य संदेश–वर्ष–4		ई.स्वी.2004 सन् के 12 अंको की File	
270.	अर्हद् दिव्य संदेश–वर्ष–5		ई.स्वी.2005 सन् के 12 अंको की File	
271.	हृदय प्रदीप (भाग-1)	2082	18 श्लोकों का हिन्दी विवेचन	सुमेरपुर-राज.
272.	हृदय प्रदीप (भाग-2)	2082	18 श्लोकों का हिन्दी विवेचन	सुमेरपुर-राज.

अनुक्रमणिका

नं.	विषय	पृष्ठ संख्या
19.	सावधान ! आगे खतरा है ।	147
20.	दम्भ छोडे, सरल बने ।	154
21.	भ्रमणा से बचे ।	162
22.	आत्मरंजन का रहस्य	170
23.	आत्म रमणता का सुख	177
24.	मन स्वस्थ तो सभी मस्त	184
25.	योगिओं की अनोखी बातें	191
26.	योगिओं की अनोखी बातें	198
27.	आत्मा अकेली है !	208
28.	मनोजय बिना साधना व्यर्थ है	216
29.	संसार में सार क्या ?	224
30.	चित्त प्रसन्नता की महिमा	233
31.	समाधि भाव में बाधक	240
32.	सार ग्रहण- करो ।	248
33.	स्वस्थ मन की सर्वोच्च शक्ति	255
34.	सच्चा सुखी कौन ?	262
35.	तत्त्वप्राप्ति दुर्लभ है	270
36.	समता से परम सुख प्राप्ति	276

सावधान ! आगे खतरा है ।

गृहीतलिङ्गस्य च चेद् धनाशा,
गृहितलिङ्गो विषयाऽभिलाषी ।
गृहीतलिङ्गो रसलोलुपश्चेत्,
विडम्बनं नास्ति ततोऽधिकं हि ॥19॥ (उपेन्द्रवज्रा)

शब्दार्थ

गृहितलिङ्गस्य=साधु जीवन स्वीकार करने के बाद,
चेद्=यदि,
धनाशा=धन पाने की इच्छा है,
विषयाऽभिलाषी=पांच इन्द्रियों के विषयों को पाने की अभिलाषा है,
रसलोलुप=रसनेन्द्रिय की आसक्ति,
विडम्बनं=कष्ट,
नास्ति=नहीं है,
ततोऽधिकं हि=उससे कोई बडा ।

गाथार्थ

यदि साधु जीवन स्वीकार करने पर भी धन पाने की इच्छा है, पांच इन्द्रिय के विषय भोग पाने की इच्छा है और रसनेन्द्रिय की लोलुपता है, तो उससे अधिक विडंबना और कुछ भी नहीं है ।

विवेचन

36 गाथाओं के इस छोटे और मार्मिक ग्रंथ के ठीक मध्य में ग्रंथकारश्री खूब मर्मभेदी बात करके हमें इस पंचम काल के विषम विष से बचने के लिए प्रेरणा देते हुए सावधान कर रहे है कि-यदि देवों को दुर्लभ और तीर्थंकरों के द्वारा आदिष्ट एवं आचरित संयम जीवन को प्राप्त करके यदि धन पाने की इच्छा हो ।

वमन किये हुए पांच इन्द्रिय के विषय सुखों को पाने की महेच्छा हो अथवा यदि सभी इन्द्रियों को उत्तेजित करने में मुख्य कारण स्वरुप रसनेन्द्रिय को पुष्ट करने की लालसा हो, तो इससे बडी विडंबना और क्या हो सकती है ?

जिनाज्ञानुसार संयम जीवन का पालन आत्मा के भव संसार का अंत लानेवाला है, ऐसे संयम जीवन को पाकर भी यदि भव संसार की वृद्धि होती हो तो समझ लेना चाहिए कि हमारा आचार पालन जिनाज्ञा प्रधान नहीं है । जिनाज्ञा की अवहेलना अवश्य ही आत्मा को दुर्गतिगामी बना देती है ।

मुख्यतया इस श्लोक में ग्रंथकारश्री विशेष कर साधुओं को लक्ष्य में रखकर उनके जीवन में धन की आशा, विषयों की अभिलाषा और रस की लोलुपता से मुक्त रहने की प्रेरणा दे रहे हैं, अतः इस विवेचन में बताई बातों से किसी भी साधु को लक्ष्य में रखकर दोष दृष्टि से देखने के बजाय मात्र इन दोषों से मुक्ति पाने का प्रयास होना चाहिए ।

पूर्वाचार्य श्री रत्नाकरसूरीश्वरजी म. विरचित **'सिद्ध पाहुडिया ग्रंथ'** में इस पांचवें आरे में पैदा होने वाले नरकगामी जीवों की संख्या बताई है । दुःखबहुल इस पांचवें दुषम आरे में पैदा होने वाले सैकडों आचार्य, हजारों साधु, साध्वी, लाखों श्रावक एवं श्राविकाएँ आगामी भव में नरक में पैदा होने वाली है ।

पढने, बोलने और विचार करने में ये संख्याएँ हमें आश्चर्य पैदा करने वाली लगेगी । अवश्य ही मन में प्रश्न पैदा होगा कि ``जीवन भर धर्माराधना करनेवाली ये आत्माएँ यदि नरक में जाएगी, तो स्वर्गलोक में कौन जाएंगे ? क्या फिर जीवनभर पापाचरण करने वाली आत्माएँ स्वर्ग में जाएगी ? अथवा यदि धर्मी का स्थान नरक में होगा और अधर्मी का स्थान स्वर्ग में होगा तो क्या धर्म का कोई महत्त्व नहीं है ?

नहीं ! ऐसा नहीं है । धर्म ही सर्वोपरि है । धर्मी का ही स्थान स्वर्गादि सद्‌गति में है और अधर्मी का स्थान नरकादि दुर्गति में है ।

प्रश्न :– तो फिर इतनी बडी संख्या में धर्मी जीवों का नरक गमन कैसे सिद्ध होगा ?

उत्तर :– पांचवाँ आरा 21 हजार वर्ष तक चलेगा । इन 21 हजार वर्षों में पैदा होने वाले आचार्य आदि चतुर्विध संघ की संख्या ऊपर बताई नरकगामी जीवों की संख्या से कई गुना ज्यादा होगी । इस पांचवें आरे में कई जीव ऐसे होंगे जो जिनाज्ञा एवं स्वयोग्य पद की गुण गरिमा को धारण करके सच्चे और श्रेष्ठ आराधक होंगे तो कई जीव मात्र नामधारी जैन बनकर परमात्मा की आज्ञा का द्रोह करने वाले होंगे ।

परमात्मा की आज्ञा-पालन करने वाले अनेकानेक आदर्श आत्माएँ जैसे-भद्रबाहुस्वामी, हरिभद्रसूरिजी, हेमचन्द्रसूरिजी, कुमारपाल महाराजा, पेथड़शाह मंत्री, वस्तुपाल-तेजपाल आदि पुण्यात्माएँ अपने भव-बंधनों से मुक्ति की ओर अग्रसर हुई है ।

फुलों के साथ कांटों की तरह जैन शासन में पैदा होने वाली वराह मिहिर, विनयरत्न, बालचन्द्र आदि शासन द्रोही पापात्माएँ अपने संसार परिभ्रमण को बढाने वाली हुई है । ऐसी पापी आत्माएँ यदि अपने जीवन में साधु पद प्राप्त करके आगे चल कर आचार्यपद भी प्राप्त कर ले और जिनाज्ञा को गौण कर स्वाज्ञा को प्रधान बताए तो अवश्य ही नरकादि दुर्गति गामी बनती है । इसलिए आचार्य श्री रत्नाकरसूरीश्वरजी आदि

पूर्वाचार्यों ने अनेकविध ग्रंथों में जो कडवा सत्य बताया है वह निःसंदेह सत्य सिद्ध होता है ।

इस सत्य को जानकर हमें अन्य की चिन्ता करने के बजाय अपना आत्ममंथन करना है कि मेरी गणना इन नरकगामी जीवों में तो नहीं होंगी ना ?

पाँचवां आरा और उसमें भी हुंडा अवसर्पिणी काल है । जो आश्चर्यकारी घटनाएँ पिछले अनंत काल में नहीं हुई वे इस अवसर्पिणी काल में हुई है । वे घटनाएँ भी मात्र एक-दो नहीं बल्कि दस है । यही सिद्ध करता है कि काल अतिविषम है ।

इसमें भी वापस वर्तमान में कोई विशिष्ट ज्ञानी का संयोग नहीं है । न तीर्थंकर है, न गणधर है, न केवली है, न श्रुतकेवली है और न ही एक पूर्व के ज्ञाता है । चारों ओर अज्ञानता की बोल-बाला है । विज्ञान के सारे संशोधन भी धर्म के प्रति श्रद्धा बढाने वाले नहीं बल्कि घटाने का ही काम करते है । मन में रही कुशंकाओं को बढाकर धर्म के मार्ग से दूर करते है ।

साथ ही आत्मा का सबसे बडा शत्रु, जो आत्मा को सत्य ज्ञान समझने ही नहीं देता है, ऐसा महामोह आत्मा को प्रतिक्षण हैरान-परेशान कर रहा है ।

चारों ओर से अंतरंग शत्रुओं के हमलों के बीच यदि वैराग्य भाव का मजबूत कवच न हो तो इन शत्रुओं से हार होना निश्चित है । दुःख गर्भित, मोह गर्भित और ज्ञान गर्भित रुप तीन प्रकार के वैराग्य के भेदों में आत्मसाधक के लिए ज्ञान गर्भित वैराग्य खूब जरुरी है । आत्मा के भीतर ज्ञान गर्भित वैराग्य पाने और स्थिर करने के लिए संसार के स्वरुप का विशेष ज्ञान होना जरुरी है ।

इसी बात की पुष्टि महामहोपाध्याय **श्री यशोविजयजी म.सा.** ने अध्यात्म-सार के पांचवें वैराग्य संभव अधिकार के प्रथम श्लोक में **''भव स्वरूप विज्ञानाद्''** पद लिखकर की है ।

संसार की भयंकरता जिसे प्रतीत हुई है, वही संयमी आत्मा अपने जीवन में मोक्ष का लक्ष्य स्थिर कर सकती है। मोक्ष के लक्ष्य को सिद्ध करने के लिए वह अपने जीवन को प्रवृत्ति प्रधान नहीं बल्कि निवृत्ति प्रधान साधना में जोडकर रखने का प्रयत्न करेगा ।

पूर्व कालीन प्रायः सभी साधक आत्माएँ अपने जीवन में मात्र एकांत वास में रहकर स्वाध्याय की साधना और आवश्यक क्रियाएँ करते थें । वे जन संपर्क से प्रायः दूर रहते थे । जिनकल्पी साधु और प्रतिमाधारी साधु, दिन का अधिकांश समय कायोत्सर्ग में ही व्यतीत करते थे ।

वर्तमान काल और क्षेत्र की स्थिति तथा संघयण बल की अल्पता के कारण एकांतवास और कायोत्सर्ग की साधना हमारे लिए असंभव है । अतः ज्ञानी भगवंतों ने हमारे संयम जीवन की सुरक्षा स्थविर कल्प के आचरण एवं लोगों के बीच में भी गुरुकुलवास में बताई है । उसमें भी मासकल्पी विहार, स्मारणा, वारणा आदि अनुशासन तथा पांच प्रहर का आत्मलक्षी स्वाध्याय हो तो ही आत्मा और देह का भेदज्ञान हो सकता है ।

परंतु काल के प्रवाह से ये सभी मर्यादाए लुप्त होती जा रही है ।

शासन प्रभावना, परोपकार, अजैनों को जैन बनाने एवं जैनों की संख्या बढाने आदि के बहाने साधुओं के साध्वाचार में अतिहानि हो रही है ।

अन्य धर्मी जो प्रचार-प्रसार के माध्यम से अपने धर्म का फैलावा करने गए है, उन सभी धर्मों के मूलभूत आचरणों का प्रायः नाश ही हुआ है । जैन शासन के मूलभूत सिद्धांत आज भी जीवित है उसका मुख्य कारण आचारों की दृढता है ।

जहाँ आचरण की शुद्धि हो वहाँ उपदेश के बिना अथवा अल्प उपदेश से भी जीवन परिवर्तन हो जाता है ।

धन्ना सार्थवाह, नयसार, वंकचूल आदि कई ऐसे दृष्टांत है, जिनको मात्र एक बार साधु भगवंत का परिचय हुआ और जीवन का आमूलचूल परिवर्तन हो गया है। **आज आधुनिक जमाने में आधुनिकता के जलप्रवाह में अच्छे-अच्छे साधु भी खींचे चले गए है। Mic, Mobile और Movie के महाव्यसन में डुबी दुनिया को धर्म के मार्ग में जोडने के बहाने साधु जीवन में भी ये तीन महाव्यसनों का प्रवेश हो रहा है।** इन सभी का उपयोग करने के लिए पैसों का पीठबल होना खूब जरुरी है। इस पीठबल की पूर्ति करने के लिए साधु अपने साध्वाचार से भ्रष्ट न हो तो आश्चर्य है।

संयम जीवन के स्वीकार के साथ ही साधु परिग्रह का पूर्णतया त्याग करता है, परंतु कुछ वर्षों बाद जब धर्म प्रचार के नाम पर, मात्र अपने नाम के प्रचार की भावना जगती है, तब आचार मार्ग में भ्रष्टता आ जाती है।

जिस गुरुकुलवास में आजीवन संयम की सुरक्षा है, वह गुरुकुलवास अब उसे बंधन रुप लगता है। गुरु और गुरुभाइयों के दोष देखना चालू होता है। धीरे धीरे आचार चुस्तता के बहाने गुरु से अलग विचरण हो जाता है। शिरछत्र के बिना उसके जीवन का लक्ष्य बदल जाता है।

लोकरंजन करने के लिए एक ओर चुस्त संयम का पालन और उसका उपदेश दिया जाता है, तो दूसरी ओर अपने स्वयं के Project चालू कर लोगों के पास से पैसे इकट्ठे किये जाते है। गोचरी परिभ्रमण में भी लोगों के घरों में जाकर उपदेश दिया जाता है। गृहस्थों के साथ अतिपरिचय होने से भक्तवर्ग बढ़ने लगता है। साधु समागम बंद हो जाता है और गृहस्थ समागम बढ़ जाता है।

स्वाध्याय, जाप-साधना, प्रभुभक्ति एवं साधु चर्या मात्र लोक रंजन के लिए ही रह जाती है। आत्मा भूला दी जाती है। शास्त्रों के ठोस अभ्यास

के बिना प्रवचनादि में उत्सूत्र प्ररुपणा होती है । **जीवन में स्वच्छंदता होने से पहले तो बडे-बडे तप और बाद में पारणे आदि में रस की लोलुपता का पोषण और पांच इन्द्रिय के अनुकूल सामग्री का संग्रह बढता जाता है ।** दीक्षा के समय अगारी मिटकर अणगार बने थे, अब अणगार मिटकर अगारी बन जाते है । **जीवन में शिथिलाचार के कारण अब स्वयं के लिए खरीदे घर-मकान में स्थिरवास हो जाता है ।** उपदेश के माध्यम से चक्रवर्ती के छह खंड के राज्य को छुडवाना आसान है, परंतु साधु जीवन में आए हुए शिथिलाचार को छुडवाना वडिल गुरुओं के लिए भी अशक्य हो जाता है । अंत में साधु जीवन लेकर भी वह साधु जीवन हार जाता है ।

भूतकाल में हुए अनंत चौदहपूर्वी प्रमाद के वश होकर निगोद में चले गए । यदि हमारे जीवन की चाल यही रही तो हमारी आत्मा की क्या गति होगी ? यह सौ बार विचारणीय है ।

लोक में भी कहावत है–

साधुजीवन कठिन है, जैसे पेड खजूर ।
चढे तो मीठे फल पावे, पडे तो चकनाचूर ।।

दम्भ छोडे, सरल बने ।

ये लुब्धचित्ता विषयार्थभोगे,
बहिर्विरागा हृदि बद्धरागाः ।
ते दाम्भिका वेषधराश्च धूर्ता,
मनांसि लोकस्य तु रञ्जयन्ति ।।20।। (उपजाति)

शब्दार्थ

ये=जो,
लुब्धचित्ता=आसक्त मन वाले,
विषयार्थभोगे=पांच इन्द्रिय के विषय भोग में,
बहिर्विरागा=बाहर से वैरागी,
हृदि बद्धरागाः=किन्तु हृदय से राग में आसक्त,
ते=वे,
दाम्भिका=दम्भकरने वाले,
वेषधराश्च=मात्र वेषधारी,
धूर्ता=ठगने वाले,
मनांसि लोकस्य=लोगों के मन को,
तु=मात्र,
रञ्जयन्ति=प्रसन्न करते है ।

गाथार्थ

जो साधु पांच इन्द्रियों के विषय भोग में लोभी है, बाहर से वैरागी किन्तु भीतर से रागी है, दंभ करनेवाले और ठग है, वे वेषधारी साधु लोगों के मन को खुश करते है ।

विवेचन

यदि हाथ की घडी बंद पड जाय तो एक व्यक्ति या एक परिवार पर उसकी असर होती है, परंतु नगर के बीच रही घडी बंद पड जाय तो पुरे नगर पर उसकी असर होती है । श्रावक जीवन हाथ की घडी के समान है । उसके जीवन में कदाचित् कोई व्रत-नियम का भंग हो जाय तो उसका नुकसान बहुलतया उसकी आत्मा को होता है, अथवा ज्यादा से ज्यादा परिवार या गांव तक उसका नुकसान होता है ।

जबकि साधु जीवन नगर के बीच रही घडी के समान है । उनके जीवन में होने वाले व्रत-नियमों के भंग से मात्र वह स्वयं नहीं लेकिन समस्त चतुर्विध संघ प्रभावित होता है । साधु ही चतुर्विध संघ का मूलाधार है ।

इसलिए ग्रंथकारश्री वैराग्य रस से भरे इस अमूल्य ग्रंथ में साधु को प्रेरणा देते हुए कह रहे है-**''जो साधु पांच इन्द्रिय के विषय भोगों में लोभी बनते है, वे बाहर से वैराग्य की बातें करके लोगों के सामने वैरागी होने का ढोंग करते है, परंतु भीतर से वे रागी होते हैं । वे मात्र साधु वेष को धारण करके अपनी स्वयं की आत्मचिंता को छोडकर दुनिया के मन को खुश करने का प्रयत्न करते हैं । हमें अपने जीवन में इस प्रकार की दांभिक प्रवृत्ति का त्याग करना चाहिए ।''**

साधु जीवन का स्वीकार करते समय साधु अपनी इच्छा से ही धन, स्वजन, भोजन आदि पांच इन्द्रियों के विषय सुखों का त्याग करता है । त्याग करने के बाद पुनः उन्हीं विषय भोगों को स्वीकार करने की इच्छा करना, वमन किये हुए को चाटने जैसा है ।

संसारी आत्मा विषयों में आसक्त बने तो वह कोई बडी बात नहीं है, परंतु संयमी आत्मा पांच इन्द्रियों के विषयों में आसक्त बने तो वह बडी मुर्खता कहलाती है ।

महामुर्ख जोहरी

एक चरवाहा प्रतिदिन जंगल में भेड-बकरियों को चराने के लिए ले जाता था । एक दिन उसे रास्ते में पडा चमकता पत्थर मिला । पत्थर की चमक को देख उसे उस पत्थर का आकर्षण हुआ । उसने उसे उठाकर कपडे में डालकर बकरी के गले में बांध दिया । कपडे से ढके होने पर भी उस पत्थर का प्रकाश बाहर आ रहा था ।

गांव में से गुजरते हुए उसे एक जोहरी मिला । बकरी के गले में चमकते पत्थर को देखकर जोहरी की आँखे चौडी हो गई । उसने सोचा–**``यह चरवाहा कैसा मूर्ख है ! लाख रुपये के हीरे को उसने बकरी के गले में बांधा है । जरुर वह उसकी कीमत नहीं जानता होगा । क्यों न सस्ते में मैं इसे ले लूं ।''**

उसने चरवाहे को बुलाकर पूछा–**बकरी के गले में क्या बांधा है ?**

उसने कहा-**'जंगल में चमकता पत्थर मिला था, उसे रखने के लिए कोई जगह नहीं थी इसलिए बकरी के गले में बांध लिया ।'**

जोहरी ने कहा–**इसे मुझे दे दो ।**

चरवाहे ने कहा-**कितने रुपयें दोंगें ?**

जोहरी ने कहा-**तुझे कितने चाहिए ?**

चरवाहा सोचने लगा-**'सेठ के पास से मैंने दस रुपये का कर्ज लिया है और वह सेठ उसके ब्याज के बदले प्रतिदिन सारा दुध ले जाता है । एकबार वह कर्ज चुका लूं तो जीवन भर की शांति हो जाएगी । जोहरी भी मुंह मांगा दाम देने को तैयार है ।''** उसने जोहरी के पास दस रुपये मांगे ।

जोहरी कहता है-**``हट् ! एक पत्थर के दस रुपये कौन देगा ?'' मैं एक रुपया देता हूँ ।**

चरवाहा भी जिद्दी था । इसलिए कह दिया–**नहीं, मैं तो पूरे दस रुपये लूंगा ।** जोहरी उसे मनाते मनाते एक रुपये से नौ रुपये तक देने के लिए तैयार हुआ । परंतु वह चरवाहा टस से मस नहीं हुआ । अंत में जोहरी ने सोचा–यह जिद्दी है तो मैं भी जिद्दी हूँ । दस रुपये तो नहीं दूंगा । कहाँ जाएगा आखिर मेरे पास ही आएगा ना ! जोहरी ने दस रुपये देने से इन्कार कर दिया ।

चरवाहा आगे बढा । उसे दूसरा जोहरी मिला । पहले जोहरी की तरह दूसरे जोहरी ने भी चमकते पत्थर का दाम पूछा । चरवाहे की मांग मात्र दस रुपये की थी, अतः उसने दस रुपये मांगे ।

जोहरी ने खुश होकर कहा, **'तूं दस नहीं ग्यारह रुपये ले और मुझे यह पत्थर दे दे ।'**

चरवाहे ने प्रसन्नता से ग्यारह रुपये लेकर हीरा बेच दिया ।

शाम को पहले वाला जोहरी उसके घर आया । उसे पूछा, **'उस चमकते पत्थर का क्या किया ?'**

चरवाहा बोला, **'मैंने तो उसे बेच दिया ।'**

जोहरी ने पूछा–**कितने रुपये में बेचा ?**

चरवाहा खुश होते हुए बोला-**आप तो नौ ही दे रहे थे और मैंने पूरे ग्यारह रुपये में बेचा है ।**

जोहरी सिर पिटते हुए बोला–**अरे मुर्ख ! लाख रुपये का हीरा तुने ग्यारह रुपये में बेच दिया ।**

चरवाहा बोला-सेठजी ! **मैं तो सिर्फ मुर्ख हूँ क्योंकि, मुझे उस हीरे की कीमत का पता नहीं था, इसलिए मैंने तो उसे ग्यारह रुपये में खो दिया । परंतु हीरे की कीमत जानते हुए भी आपने तो मात्र एक रुपये के लिए खो दिया । इसलिए आप तो महामुर्ख हो !!!**

जो जीव परमात्मा के तत्त्वज्ञान से अनजान है । जिसने परमात्मा के वचनामृत का पान नहीं किया है, वह अपने जीवन को पांच इन्द्रियों के विषय सुख पाने और भोग सुख में प्रसार करे तो उसे मुर्ख कहेंगे ।

परंतु गुरु भगवंतों के वैराग्यवर्धक उपदेशों को सुनकर जिसने अपने जीवन को वैराग्य के रंग से वासित किया है, संसार के सभी स्वजन- संबंधों को सांप की कंचुकी की तरह त्याग किया है, सत्त्वशाली बनकर मोहनीय आदि घाति कर्मों से युद्ध छेडा है, नश्वर सुखों को छोडकर शाश्वत सुख पाने के लिए मेरु पर्वत के समान पाँच महाव्रतों के भारों को वहन किया है ।

अरिहंत, सिद्ध, साधु, देव, गुरु और आत्म-साक्षी से सर्व सावद्य पाप व्यापारों का त्याग किया है, वह साधु यदि पुनः संसार के दलदल में पैर रखना चाहे, पल भर के लिए सुख का आभास कराकर दीर्घ काल तक मरणांत दुःखों को देने वाले पांच इन्द्रियों के विषय सुख को पाने की इच्छा करे, उसे पाने के लिए संयम जीवन की साधना को मलिन बनाएं, दुनिया की आँखो में धूल डाले, दंभ का आश्रय लेकर अनादिकालीन कुसंस्कारों की अग्नि में घी डालकर बढाता रहे, उसे ज्ञानी भगवंत मुर्ख नहीं लेकिन महामुर्ख कहते है ।

अध्यात्म सार नाम के अनमोल ग्रंथ में न्याय विशारद महामहोपाध्याय **श्री यशोविजयजी म.सा.** ने तीसरे **दम्भत्याग अधिकार** में अध्यात्म मार्ग में आगे बढने में दम्भ को सबसे बडा दोष बताया है । उन्होने अनेक दृष्टांतों से दम्भ के स्वरुप को बताकर हमें उस दोष से बचने की प्रेरणा की है । दम्भ की भयानकता बताते हुए वे कहते है–

दम्भ तो मोक्ष रुपी बेल (लता) को जलाकर भस्म करने में अग्नि के समान है ।

क्रिया रुपी उज्ज्वल चन्द्रमाँ को ग्रसित करने में राहु ग्रह के समान है ।

दुर्भाग्य को बढाकर सद्भाग्य को नाश करने वाला मुख्य कारण है ।

आत्मिक सुखों की प्राप्ति में अवरोध करने वाली अर्गला है ।

ज्ञान रुपी विशाल पर्वत को चकचूर करने में सर्वाधिक शक्तिशाली वज्र है ।

काम रुपी अग्नि को बढाने में घी की आहूति के समान है ।

दोष, आपत्ति और व्यसनों को पास लाने वाले कुमित्र के समान है ।

व्रत नियम आदि आत्मिक संपत्ति को चुराने में क्रुर-लुटेरे व चोर के समान है ।

संसार समुद्र में डुबाने के लिए लोहे की नाव के समान है ।

तप रुपी दीपक के लिए निरर्थक आखों के अंधेपन समान है ।

केशलोच, भूमिशयन, ब्रह्मचर्यपालन आदि संयम रुपी बहुमूल्य मणि में दाग समान है ।

कुल्टा स्त्री के दुराचार को बढाने वाले शीलपालन के ढोंग समान है ।

मोक्षमार्ग में आगे बढने में कदम-कदम पर कष्टदायी तीक्ष्ण काँटो के समान है ।

जैसे बर्फ की वर्षा कमलवन को जला देती है, रोग की एक मार शरीर की स्वस्थता को नष्ट कर देती है, जैसे दावानल की आग जंगल के वृक्षों को खाक कर देती है, जैसे दिन में रहे सभी प्रकाश को रात्रि गायब कर देती है, जैसे वर्षों तक किये शास्त्राभ्यास को मंद बुद्धि भूला देती एवं जैसे सुख के प्रसंग में कलह दुःखदायी एवं उपद्रवकारक है, वैसे धर्म ही की आराधना में दम्भ उपद्रवकारक है ।

मनपसंद मधुर भोजन, शरीर की सुखशीलता, श्रृंगार तथा काम भोगों का त्याग करना आसान है परंतु जीवन में होने वाली दांभिक प्रवृत्ति का त्याग करना मुश्किल है ।

जो साधु पंचम काल अथवा अपनी अवस्था के योग्य संयम क्रिया एवं

महाव्रतों की रक्षा आदि उचित यतना नहीं करते है वे दाम्भिक अपने आप को साधु बताकर जगत् को ठगने का कार्य करते है । जिसने धार्मिक के रुप में अपनी प्रसिद्धि की महत्त्वकांक्षा से अपने पापाचरण को छुपाया है, वह ढोंगी चारित्रहीन होने पर भी अन्य साधु को चारित्रहीन मानता है । अपनी बड़ाई और दूसरे चारित्रवान आत्माओं की निन्दा करके वह मोक्षमार्ग में बाधक कठोर कर्मों को बांधकर नरकादि दुर्गति में जाता है ।

अपने जीवन में घोरातिघोर पाप करने वाले, स्त्री-ब्राह्मण-भ्रूण और गाय की हत्या करने वाले, चोर-लुटेरे-डाकु भी अपने जीवन में हुए पापाचरण का गुरु साक्षी से प्रायश्चित्त कर मोक्ष में चले गए है, परंतु दम्भ करके अपनी आत्मा को मलिन करने वाली आत्मा का कभी मोक्ष नहीं होता है ।

आगम सूत्रों में कहा है-**''शुद्धिः स्याद् ऋजुभूतस्य''** सरल जीवों की ही आत्मिक शुद्धि हो सकती है ।

जैसे समुद्र को पार करने के लिए छोटे से छेदवाली नाव अनर्थकारी है, **''वैसे ही जिसका मन अध्यात्मभाव में रत है, उसके लिए थोडा-सा भी दम्भ करना उचित नहीं है ।''**

अतः साधु को दम्भ का त्याग करने के लिए लोक रंजन की प्रवृत्ति को छोडकर आत्मरंजन और निःस्पृहता गुण को आत्मसात् करने का विशेष प्रयत्न करना चाहिए ।

योगीराज आनंदघनजी

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. ने योगशास्त्र में दुनिया में रही सभी रिद्धी और सिद्धिओं का मूल कारण रत्नत्रयी की आराधना कहा है । रत्नत्रयी की आराधना के फलस्वरुप योगीराज श्री आनंदघनजी को अनेक सिद्धियाँ हासिल थी । कहते है उनके मूत्र में भी सुवर्णसिद्धि थी । दुनिया के लोग अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए उनका

आश्रय करते थे । राजा और प्रजा सभी उनकी शरण में जाते थे । लेकिन आत्मरंजन में लीन रहे उनके मन लोक रंजन की कोई कीमत नहीं थी ।

एक राजा को कोई संतान नहीं थी । सन्तान प्राप्ति की इच्छा से राजा ने आकर आनंदघनजी को अपनी समस्या बताई । आनंदघनजी ने उसे सुनकर एक पत्ते पर कुछ लिखकर राजा को दे दिया । राजा को लगा इसमें कोई संतान प्राप्ति का मंत्र होगा, इसलिए उसने उस पत्ते को मोडकर ताबिज बनाकर अपनी पत्नी की पहना दिया ।

श्रद्धा के बल पर रानी गर्भवती बनी और कालक्रम से उसने राजपुत्र को जन्म दिया । आनंदघनजी की ओर कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए अपने पूरे राजपरिवार के साथ वह आनंदघनजी को वंदन करने के लिए गया । राजा ने आनंदघनजी को कहा, **'आपके दिये हुए मंत्र के प्रभाव से मेरे घर में वर्षों से पालना बंधा है, अतः आप मेरे योग्य सेवाकार्य बताकर मुझे कृतार्थ करे !'**

आनंदघनजी ने आश्चर्य से पुछा, **'मैंने आपको कौन सा मंत्र दिया ?''**

तब राजा ने रानी को दिया वह ताबिज खोलकर वह पत्ता आनंदघनजी को बताया । निःस्पृहता गुण के स्वामी आनंदघनजी ने राजा को पत्ते पर लिखे वाक्य को पढ़ने को कहा । राजा ने वह वाक्य पढ़ा और आश्चर्यचकित हो गया । उसमें आनंदघनजी ने लिखा था-**'राजा को पुत्र हो इससे आनंदघन को क्या ? और न हो तो भी आनंदघन को क्या ?'**

आनंदघनजी जैसी निःस्पृहता हमारे जीवन में आएगी तो ही हम दम्भ का त्याग कर सरल बन सकेंगे ।

भ्रमणा से बचे।

मुग्धश्च लोकोऽपि हि यत्र मार्गे,
निवेशितस्तत्र रतिं करोति ।
धूर्तस्य वाक्यैः परिमोहितानां,
केषां न चित्तं भ्रमतीह लोके ।।21।। (उपजाति)

शब्दार्थ

मुग्धश्च=और भोले,
लोकोपि=लोग भी,
हि=वास्तव में,
यत्र=जहाँ,
मार्गे=मार्ग में,
निवेशित=प्रवेश कराए गए,
तत्र=वहाँ,
रतिं=आनंद को,
करोति=करता है,
धूर्तस्य वाक्यैः=ठग के वचनों से,
परिमोहितानां=चारों ओर से भ्रमित किये हुए,
केषां=किसका,
न=नहीं,
चित्तं=मन,
भ्रमति=भ्रमित किया जाता है,
इहलोके=इस लोक में।

गाथार्थ

...और वास्तव में दंभी लोगों के आचरित मार्ग में भोले लोग प्रवेश कराए जाने पर वहाँ आनंद मनाते है। ठग के वचनों से चारों ओर से मोहित हुए इस लोक में किसका मन भ्रमित नहीं किया जाता है ?

विवेचन

नाव दो प्रकार की होती है- 1. लकडी की और 2. पत्थर की । लकडी की नाव स्वयं समुद्र में तैरती है एवं उसका आश्रय लेने वालों को भी समुद्र से तिराती है । लेकिन पत्थर की नाव स्वयं समुद्र में डुबती है एवं उसका आश्रय लेने वालों को भी डुबाती है ।

नाव की तरह गुरु भी दो प्रकार के होते है । 1. सुगुरु और 2. कुगुरु । सुगुरु लकडी की नांव के समान है, जो स्वयं इस संसार सागर से पार उतरते है और उनका आश्रय लेने वालों की भी संसार सागर से पार उतारते है । जबकि कुगुरु पत्थर की नांव के समान है, जो स्वयं संसार सागर में डुबते है और उनका आश्रय लेने वालों को भी डुबाते है ।

पिछले श्लोक में ग्रंथकारश्री ने कुगुरु के लक्षण स्वरुप दम्भ दोष बताया था, मोक्षार्थी को इस दोष का त्याग करना अनिवार्य है । प्रस्तुत श्लोक में वे हमें दम्भी कुगुरु के लक्षण बताते हुए सावधान करते कह रहे है कि दम्भी साधु भोले लोगों को वचन चातुरी के जाल में फँसाकर खुश होते है । दम्भी साधु के वचनों से मोहित हुए किस जीव का मन भ्रमित नहीं होता है ? यह बडा सवाल है ।

वर्तमान विश्व में प्रायः 1500 प्रकार के धर्म-संप्रदाय है । सभी धर्म-संप्रदायों की विविध मान्यताएँ है । कोई धर्म हिंसा करने में पुण्य मानता है, तो कोई धर्म अहिंसा में पुण्य मानता है । कोई संप्रदाय मूर्ति में भगवान की स्थापना करते हुए उसे साक्षात् भगवान मानता है, तो कोई मूर्ति को पत्थर का टुकडा मानकर उसकी आशातना करता है ।

परंतु सभी धर्म किसी न किसी अदृश्य शक्ति को भगवान मानते है, उनका स्वरुप बताने वाले को गुरु मानते है तथा अपने इच्छित स्वार्थ की पूर्ति के लिए अनेक रीति-रिवाज का भी पालन करते है । ये सारे रीति-रिवाज का निर्देश उस उस धर्म में रहे गुरु ही बताते है । इसलिए गुरु को

दो कमरों के बीच रहे दीपक जैसा बताया है, जो भगवान और भगवान को रिझाने के उपाय स्वरुप धर्म को बताते है ।

1500 प्रकार के धर्मों में जैन शासन सर्व श्रेष्ठ है क्योंकि, वह संसार वृद्धि का नहीं बल्कि संसार के अन्त का मार्ग बताता है । जैनशासन में वीतराग तीर्थंकर परमात्मा, देव तत्त्व के स्थान पर है ।

पंच-महाव्रतधारी एवं परमात्मा के अभाव में विशुद्ध मोक्षमार्ग बताने वाले सद्गुरु, गुरु तत्त्व के स्थान पर है । तथा परमात्मा की आज्ञाप्रधान साधु जीवन एवं श्रावक जीवन के आचार, धर्म तत्त्व के स्थान पर है ।

इन देव-गुरु और धर्म तत्त्वों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण गुरु तत्त्व है । गुरुतत्त्व की मजबूती पर ही देव और धर्म तत्त्व की मजबूती है । लोक में भी कहते हैं–

भोजन में सब्जी की पसंदगी में भूल हुई तो एक बार का भोजन बिगड जाता है ।

सुबह-सुबह किसी अयोग्य व्यक्ति का चहेरा देख ले तो एक दिन बिगड जाता है ।

महिने भर की मेहनत के बाद यदि सेठ पगार न दे तो एक महिना बिगड जाता है ।

वर्ष भर पढाई करने पर भी परीक्षा समय बीमारी आ जाय तो एक वर्ष बिगड जाता है ।

जीवन साथी की पसंदगी में भूल हो जाय तो एक जीवन बिगड जाता है ।

परंतु यदि गुरु की पसंदगी में भूल हो जाय तो जन्मोजन्म बिगड जाते हैं ।

दुनिया में रहे गुरु के बाहर और अन्दर के स्वरुप के अनुसार चार भेद कर सकते है । इन चार भेदों को समझने के लिए चार पक्षियों के उदाहरण–

1) हंस – जो बाहर से भी ऊजला है और अंदर से भी पवित्र होने से ऊजला है ।

2) कोयल – जो बाहर से श्याम है, परंतु अंदर से पवित्र होने से ऊजली है ।

3) कौआ – जो बाहर से श्याम है और अंदर से भी मलिन होने से श्याम है ।

4) बगला – जो बाहर से तो ऊजला है, परंतु अंदर से मलिन होने से श्याम है ।

बगला सरोवर में रहता है । वहाँ रहते हुए उसके शिकार करने का तरीका सबसे अलग है । वह योगी की तरह स्थिर रहता है । उसके लंबे लंबे पैर पानी में रही मछलियों को वनस्पति का ही एहसास कराते है । इसलिए सरोवर में रही मछलियाँ उससे भयभीत नहीं होती । निर्भयता पूर्वक मछलियाँ आस-पास में तैरती है । तभी मौका देखकर योगी की तरह ध्यान साधना में लीन बनने का ढोंग करने वाला बगला लपक करके उन मछलियों का शिकार कर लेता है । बगले की यह प्रवृत्ति उसकी अंदर रही मलिनता को प्रकट करती है ।

कुगुरु भी इस बगले के समान है । उनसे सावधान रहना अति मुश्किल है । अन्य धर्मी और संन्यासी जो अंदर से पवित्र या मलिन भी क्यों न हों लेकिन बाह्य आचार मर्यादाओं के स्तर पर उन्हें कुगुरु मानकर प्रायः त्याग ही किया जाता है । अतः उनसे दूर रहना आसान है । लेकिन जो बाह्य वेश से तो जैन साधु हो, परंतु पिछली गाथा में बताए स्वरुप वाले ठग और दम्भी हो, वे सभी बगले समान बाहर से ऊजले लेकिन अंदर से मलिन होते हैं ।

धन्य चरित्र में बताए तीन साधु के दृष्टांत से दम्भी साधु के वचन विलास को समझ सकते है–

तीन साधु

किसी नगर में चारित्र संपन्न, ज्ञानी, जितेन्द्रिय, संसार परिभ्रमण से डरे हुए एवं तप से कृश शरीर वाले एक मुनि थे। **एक दिन गोचरी हेतु नगर में प्रवेश कर 42 दोषों से रहित शुद्ध भिक्षा की शोध कर रहे थे।** ईर्यासमिति का पालन करते हुए, अप्रमत्त भाव से निर्दोष भिक्षा के लिए वे किसी श्रेष्ठी के घर पधारे। श्रेष्ठी के घर में रही स्त्रिओं के विविध हाव-भाव आदि से अक्षुब्ध-मनवाले एवं कछुए की तरह गुप्तेन्द्रिय वे मुनि **'धर्मलाभ !'** कहकर भिक्षा के उचित स्थान पर खडे रह गए।

'धर्मलाभ !' शब्द सुनते ही घर में रही श्राविका **'साधु भगवंत आये हैं'** जानकर दान देने की इच्छा से रसोई घर में जाकर वोहराने योग्य सामग्री लेकर बाहर आयी। परंतु जैसे ही वह बाहर आयी, वैसी ही मुनि भगवंत दोषित भिक्षा जानकर वहाँ से अन्यत्र चले गए। अपने घर आये मुनि भगवंत भिक्षा लिये बिना ही चले गए, इस बात से उस श्राविका को मन में खुब खेद हुआ।

थोडी देर में उसके भाग्य योग से एक गुणानुरागी साधु उसी घर में पधारे। **धर्मलाभ !** कहकर पहले आये मुनि की तरह वे भी भिक्षा के लिए उचित स्थान पर खडे रह गए। श्राविका पुनः वोहराने योग्य सामग्री लेकर आयी। मुनि ने भी भिक्षा ग्रहण कर ली। श्राविका प्रसन्न हुई परंतु मन में दोनों मुनियों के आचरण में भेद जानकर जिज्ञासा वृत्ति से मुनि को कहा, **''हे महात्मा ! यदि आप गुस्सा न करे तो मैं एक सवाल पुछूं ?''**

सरल हृदयी होने से मुनि ने कहा, **''हे श्राविका ! यथेच्छ पूछो ! मैं कभी गुस्सा नहीं करता हूँ।''**

श्राविका ने पूछा–**``आपसे पहले आपके समान ही एक साधु यहाँ आये थे । उन्होंने भी आपकी तरह धर्मलाभ कहकर घर में प्रवेश किया था । मैं भोजन की सामग्री लेकर बाहर आयी, परंतु कुछ भी भिक्षा ग्रहण किये बिना वे अन्यत्र चले गए । जबकि आपने भिक्षा ग्रहण की । आप दोनों के इस आचार में भेद क्यों ?''**

सरल हृदयी मुनि ने कहा-``हे श्राविका ! वे मुनि भगवंत तो जीव रक्षा में परायण, ब्रह्मचर्य की गुप्ति को पालन करनेवाले एवं निर्मम है । वे मात्र शरीर को टिकाने के लिए अन्तप्रान्त, तुच्छ आहार ग्रहण करते है । भिक्षा के 42 दोषों को देखकर साधुता में रहते हुए भिक्षा लेते है और 5 दोषों का त्याग करते हुए निर्मम भाव से आहार करते है ।

आपके द्वारा लाया गया आहार अति-स्निग्ध, मधुर आदि षड्रस से युक्त है । एवं आपने जो आहार की सामग्री रसोई घर से लायी वह अंधकार से प्रकाश में लायी थी, जो भिक्षा का एक दोष है । इसलिए वे मुनि भगवंत भिक्षा लिये बिना ही वापस चले गए ।

जबकि मैं मात्र वेषधारी साधु हूँ । उनके चारित्र के सामने एकदम हीन हूँ । धैर्य गुण वाले वे मुनि कहाँ और हीनसत्त्व वाला मैं कहाँ ? वे सिंह है तो मैं सियार हूँ । वे सूर्य है तो मैं जुगनु हूँ । वे सर्वगुणों से विभूषित है और मैं सर्वदोषों से मलिन हूँ । उनमें और मुझमें बडा अन्तर है । अतः मैंने भिक्षा ली ।'' इतना कहकर धर्मलाभ का आशीष देकर मुनि भगवंत वहाँ से निकल गए ।

सरलहृदयी मुनि की इन बातों को सुनकर, दोनों मुनि के प्रति अहोभाव से श्राविका का मस्तक झुक गया । वह सोचने लगी कि **``इस जगत् में जो निर्गुणी होते है वे गुण को जानते नहीं है और जो गुणवान होते है वे अन्य गुणवानों में ईर्ष्यावाले होते है । गुणवान और गुणानुरागी दोनों इस जगत् में विरले ही होते है । पहले पधारे हुए**

महात्मा गुणवान थे और ये गुणानुरागी है । वास्तव में दोनों ही धन्यवाद के पात्र है ।''

दोनों मुनिओं के प्रति अहोभाव से भावित होकर वह श्राविका जैसे ही रसोई घर में प्रवेश करती है, उसी समय एक दम्भी, शिथिलाचारी, पार्श्वस्थ मुनि ने उसी घर में भिक्षा हेतु प्रवेश किया । **'धर्मलाभ !'** बोलकर भिक्षा के लिए योग्य स्थान पर खडे रहे । श्राविका ने भी पूर्व की तरह भिक्षा योग्य सामग्री लेकर उन्हें वहोराई । फिर पहले की तरह श्राविका ने उन्हें भी पूर्व के दोनों महात्मा के विषय में बताकर प्रश्न किया ।

अन्य के दोष देखनेवाले, गुणों में द्वेष रखने वाले उस दम्भी साधु ने पूर्व के दोनों मुनिभगवंतों की हीलना करते हुए कहा-``उन दोनों को मैं अच्छी तरह से जानता हूँ । **पहला साधु अपना मान-सन्मान बढाने के लिए इस तरह ढोंग करता है । माया करके लोगों के मन को आकर्षित करता है । तथा दूसरा साधु इस तरह के दीन वचनों को कहकर सुखपूर्वक अपना पेट भरता है ।** अन्य की स्तुति करके अपना साधुपना बताता है कि मैं कितना महान हूँ । ये दोनों भी दम्भ के सागर है । परंतु मैं ऐसा नहीं हूँ ।

मैं न तो दम्भ करता हूँ, न माया । जैसी भिक्षा मिलती है, वैसी ले लेता हूँ । दोष-निर्दोष कुछ नहीं देखता । दोष-निर्दोष की बाते तो कपट और कदाग्रही जीव करते हैं । मैं तो सरल हृदय हूँ । पहले मैं भी इनकी तरह दोष-निर्दोष की बाते करके लोगों को आकर्षित करता था, भोले लोगों को अपना बनाकर मान-सन्मान पाता था । परंतु मुझे इस तरह माया करने में कोई लाभ नहीं दिखता है । ``अतः माया छोडकर अब मैं सरल बन गया हूँ ।'' इतना कहकर वे भी निकल गए ।

श्राविका तो इस साधु को वचनों को सुनकर स्तब्ध हो गई । वह सोचने

लगी, ``अहो ! ये कितने ईर्ष्यालु है । गुण और गुणानुराग दोनों भी इनके जीवन में नहीं है । दोष के एक मात्र भण्डार है फिर भी गुणवानों के प्रति कैसे निंदा भरे वचन बोलते है ।

अहो ! निष्कारण ही ये दोनों महामुनियों के प्रति ईर्ष्या करते है । पहले मुनि भगवंत तो सभी गुणवान मुनिओं में अग्रणी थे । दूसरे मुनि भगवंत गुणानुरागी थे, जो गुणवानों के गुणगान करने में एवं अपने दोषों को प्रकट करने में सदा प्रयत्नशील थे । **``ये दोनों भी आत्मकल्याण करने वाले होने से शुभ है । जबकि ये तो दोष से भरे और गुण के द्वेष वाले है । इनसे तो दूर रहना ही भला है ।''**

वर्तमान में इस श्राविका की तरह विवेक करने वाले जीव कितने होते है ? अधिकतर लोग मात्र बाह्य व्यवहार को देखते है । बाह्य प्रभाव, चमत्कार, मीठे वचन, गृहस्थों की प्रशंसा एवं त्यागी साधुओं को दम्भी बतानेवालों से दुनिया के भोले लोग भ्रमित हो जाते है ।

किसी भी वस्तु को खरीदने से पहले हर व्यक्ति परीक्षा अवश्य करता है । मात्र पीली धातु देखकर कोई सोना नहीं खरीदता, उसे कसौटी पर कसते है ।

मात्र चेहरा एवं वेशभूषा देखकर कोई व्यापारी किसी ग्राहक को उधार माल नहीं देता है, उसमें भी व्यापारी परीक्षा करता है ।

मात्र रंग देखकर कोई आम नहीं खरीदता, उसे सुंघकर, उसका टुकडा चखकर उसकी भी परीक्षा करते है । इतना ही नहीं बल्कि एक मटका भी खरीदना हो तो उसे बजा-बजाकर उसकी भी परीक्षा करते है । परंतु देव-गुरु और धर्म रुप तत्त्वत्रयी के आधार ऐसे गुरु तत्त्व की परीक्षा न करना, यह कैसी मुर्खता है ?

आत्मरंजन का रहस्य

ये निःस्पृहास्त्यक्त-समस्त-रागा-
स्तत्त्वैक-निष्ठा गलिताभिमानाः ।
सन्तोष-पोषैक-विलीन-वाञ्छा-
स्तेरञ्जयन्ति स्वमनो न लोकम् ।।22।। (इन्द्रवज्रा)

शब्दार्थ

ये=जो साधु,
निःस्पृहाः=स्पृहा से मुक्त है,
त्यक्त-समस्त-रागाः=सभी राग के बन्धनों से छुट चुके है,
तत्त्वैक निष्ठा=तत्त्व मार्ग पर दृढ श्रद्धावाले है,
गलिताभिमाना=मान को गलाए हुए है,
सन्तोष-पोषैक-विलीन वाञ्छा=संतोष गुण की पुष्टि से नष्ट हुई अभिलाषा वाले है,
ते=वे साधु,
रञ्जयन्ति=प्रसन्न करते हैं,
स्वमनो=अपने मन को,
न लोकम्=न कि दुनिया को ।

गाथार्थ

जो साधु भगवंत स्पृहा (इच्छा) से मुक्त है, सभी राग के बन्धनों से मुक्त हो चुके है, तत्त्वमार्ग पर दृढ श्रद्धावाले है, मान को गलाए हुए है, संतोष गुण की पुष्टि से नष्ट हुई अभिलाषा वाले है, वे साधु भगवंत दुनिया को नहीं, बल्कि अपने मन को अर्थात् अपनी आत्मा को खुश करते है ।

विवेचन

मोक्ष का सुख तो हमारे लिए परोक्ष है, परंतु इस संसार में रहते हुए भी अनेक गुण रत्नों के खजाने को भरकर कई आत्माएँ यहाँ पर भी मोक्ष के सुखों का साक्षात् अनुभव करती है । **ग्रंथकारश्री इस श्लोक के द्वारा मोक्ष के सुखास्वाद का गुप्त रहस्य प्रकट कर रहे है । वे कह रहे है कि जो साधु निःस्पृही है, राग के बंधनों से मुक्त हैं, तत्त्वमार्ग पर दृढ श्रद्धावाले हैं, मान से मुक्त है और संतोष की पुष्टि से नष्ट हुई अभिलाषा वाले हैं, वे दुनिया के लोगों को नहीं बल्कि अपने मन को खुश करते हैं ।** मन को खुश करना यानी आत्मोन्नति पर चढते हुए सहज आनंद की प्राप्ति करना । प्रत्येक मोक्षार्थी का यही लक्ष्य होना चाहिए कि वह लोक रंजन का त्याग कर आत्म रंजन में विशेष रुप से प्रयत्नशील बने ।

कोई व्यक्ति गाय आदि पशु को हरा-भरा घास खिलाता हो, कुत्तों को लड्डु खिलाता हो और कबुतर आदि पक्षिओं को अनाज का दान करता हो तो वह बडा धर्मी कहलाएगा और उसके दान को लेने जा रहे पशु-पक्षी को रोकने वाला, उन्हें लकडी से मारकर उस वस्तु से दूर करने वाला पापी कहलाएगा ।

सामान्य तया दुनिया के लोग मात्र बाह्य प्रवृत्ति के आधार पर व्यक्ति को धर्मी और पापी का इल्काब दे देती है । परंतु ज्ञानी तो भीतर के आशय को देखते है । हो सकता है कि गाय को हरा-भरा घास देने वाला आगे चलकर उस गाय को कत्लखाने ले जा रहे हो, कुत्तों को लड्डु देने वाला उस लड्डु में जहर मिलाकर हमेशा के लिए कुत्तों को चुप करना चाहता हो, अथवा कबुतरों को अनाज के दाने देने के बहाने उन कबुतरों को जाल में फंसाना चाहता हो तो वह व्यक्ति धर्मी नहीं बल्कि महापापी-कहलाएगा तथा उन पशु पक्षियों को रोकने वाला, लकडी मारकर भी अटकाने वाला वह व्यक्ति पापी नहीं, बल्कि परम उपकारी कहलाएगा ।

बाहर के आचरण की अपेक्षा भीतर के आशय का शुद्ध होना खूब

जरुरी है । ग्रंथकारश्री हमें उन महामुनियों का आदर्श दिखा रहे है कि जो दुनिया को नहीं लेकिन प्रभु को, गुरु को और आत्मा को खुश करके अपने मन को खुश करने में प्रयत्नशील है, उनके गुण वैभव की ओर दृष्टिपात करते है–

1) निःस्पृहता– स्पृहा यानी इच्छा । इच्छाओं का स्वभाव बडा विचित्र है । एक इच्छा पूरी होने पर दूसरी इच्छा पैदा होती है । इसलिए प्रभु महावीर ने उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है– ***'इच्छाओ आगस समा अणंतिया'*** अर्थात् इच्छाएं आकाश की तरह अनंत है । जैसे आकाश का कोई अंत नहीं है, वैसे इच्छाओं का भी कोई अंत नहीं है । इच्छाओं का अंत करना हो तो एक मात्र उपाय है-निःस्पृहता गुण को आत्मसात् करना ।

ज्ञानसार ग्रंथ में महामहोपाध्याय श्री यशोविजयजी ने निःस्पृहता अष्टक में कहा है–

स्पृहावन्तो विलोक्यन्ते लघवस्तृणतूलवत् ।
महाश्चर्यं तथाप्येते मज्जन्ति भववारिधौ ।।

अर्थ :– सामान्य से देखा जाता है कि जो वस्तु जितनी हल्की होती है, वह पानी की सतह पर तैरती है और भारी वस्तु पानी में डुब जाती है । परंतु आश्चर्य है कि पदार्थों को पाने की इच्छा से व्यक्ति घास के तिनके और रुई से भी हल्का होकर लोगों से मांगता रहता है । फिर भी वह संसार समुद्र में डुब जाता है ।

परस्पृहा महादुःखं निःस्पृहत्वं महासुखम् ।
एतदुक्तं समासेन, लक्षणं सुख दुःखयोः ।।

अर्थ :– पर पदार्थ की स्पृहा रखना महा दुःख है, जबकि निःस्पृहता महासुख है ।

अतः साधु अपने जीवन में निःस्पृहता को आत्मसात् करते है ।

2) राग के त्यागी– आत्मा का सबसे बडा शत्रु मोह है । उस मोह के दो पुत्र है राग और द्वेष । दुनिया की नजर में द्वेष ज्यादा खतरनाक है क्योंकि वह भोंकते हुए कुत्ते की तरह आकर काटता है । लेकिन द्वेष से भी राग ज्यादा खतरनाक है । राग चुपके से आकर पिंडी पकड लेने वाले

कुत्ते की तरह है । राग-द्वेष का घनिष्ट सम्बन्ध है । जिस पदार्थ या व्यक्ति पर राग होता है, उसके विरोधी पदार्थ या व्यक्ति पर अवश्य द्वेष होता है । इसलिए ज्ञानी आत्माएँ राग के त्याग में विशेष प्रयत्नशील होती है । राग के तीन प्रकार है–

(1) काम रोग – किसी भी व्यक्ति या वस्तु के मनपसंद शब्द, रुप, रस, गंध और स्पर्श को देखकर मन में जो आकर्षण भाव पैदा होता है, जो परिणाम में भोग के रुप में परिणत होता है, वह काम राग है । पति-पत्नी के सम्बन्ध में काम राग की प्रधानता रहती है ।

(2) स्नेह राग – किसी स्वजन सम्बन्धी के साथ आकर्षण भाव पैदा होता है, वह स्नेह राग है । परिवार के अन्य सम्बन्धी के प्रति व्यक्ति को जो लगाव होता है, वह स्नेह राग होता है ।

(3) दृष्टि राग – किसी गलत मान्यता को स्वीकार करने के बाद, अपनी मान्यता गलत सिद्ध होने पर भी हठाग्रह के कारण अपनी बात को छोडने तैयार न होना, वह दृष्टि राग है ।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. ने **वीतराग स्तोत्र** में दृष्टिराग का त्याग सबसे कठिन बताया है । वे कहते है–

कामराग-स्नेहरागा-विषत्करनिवारणौ ।
दृष्टिरागस्तु पापियान् दुरुच्छेदसतामपि ।।

अर्थ :– काम राग और स्नेह राग को छोडना तो भी आसान है परंतु दृष्टि राग को छोडना सज्जनों के लिए भी अति कठिन है ।

3) तत्त्वमार्ग में दृढ श्रद्धा :– समकिती और मिथ्यात्वी दोनों में सबसे बडा भेद एक ही है-दुनिया के पदार्थों को देखने का नजरिया । मिथ्यात्वी आत्मा वस्तु को मात्र बाह्य नजरिये से देखता है, जबकि समकिती आत्मा वस्तु के बाह्य और अंतरंग-दोनों नजरिये से देखता है ।

मिथ्यात्वी आत्मा के लिए जो बाग-बगीचे, महल एवं हवेलियों की पंक्तियाँ, नयनरम्य पर्यटन स्थल, नदी, सरोवर, वन, उपवन आदि

मोहित करने वाले होते है, वे ही समकिती आत्माओं के लिए परम वैराग्य के कारण होते है ।

मिथ्यात्वी आत्मा स्त्री को देखकर उसमें चन्द्रमाँ की कल्पना करती है । उसी स्त्री को समकिती आत्मा विष्ठा, मूत्र, मांस, हड्डियों आदि अशुचि पदार्थों से भरी हुई मानती है ।

मिथ्यात्वी शरीर को सौन्दर्य के तरंगों से पवित्र मानता है, जबकि समकिती शरीर को कृमि समुह से भरा हुआ देखता है ।

इस भेद रेखा का मुख्य कारण तत्त्व दृष्टि है । ऐसी तत्त्वदृष्टि वाले मोक्षमार्ग पर जो दृढ श्रद्धा धारण करता है उसे संसार की कोई भी विचित्र घटना दु:खी नहीं कर सकती है ।

4) मान मुक्ति :– चार कषायों में मान दूसरा कषाय है । मान कषाय के कारण ही क्रोध और कलह पैदा होते है । जब भी व्यक्ति के मान पर ठेस लगती है, तब निश्चित तौर पर व्यक्ति क्रोधित हुए बिना नहीं रहता है ।

क्रोध आते ही व्यक्ति का विवेक चला जाता है । निर्विवेकी व्यक्ति के वचनों पर कोई लगाम नहीं रहती है । वह बडे-छोटे का व्यवहार भी भूल जाता है । मान के कारण विनय भी नष्ट हो जाता है । मोक्ष का मूल चारित्र है । चारित्र का मूल समकित है, समकित का मूल ज्ञान है और ज्ञान का मूल विनय गुण है । यदि विनय गुण चला जाता है, तो शेष साधना भी निष्फल हो जाती है । भूतकाल में ऐसे कई दृष्टांत है जिन्होंने एक वस्तु पर अभिमान कर के उस वस्तु की प्राप्ति दीर्घ काल के लिए खो दी ।

अपनी जाति के अभिमान से हरिकेशी राजा को चण्डाल के घर जन्म लेना पडा ।

कुल के अभिमान के कारण मरिची को अनेक भवों में ब्राह्मण कुल में पडा । भगवान महावीर के भव में भी 84 दिन तक ब्राह्मणी देवानंदा की कुणी में रहना पडा ।

❖ गर्भवती हिरणी के शिकार से आनंदित होकर मात्र इतने वचन-**'मैं कितना बलवान हूँ कि मैंने एक तीर से दो निशान ताक दिये'** कहकर

श्रेणिक महाराजा को 84 हजार वर्ष तक नरक की घोर पीडा सहन करनी पड रही है ।

❖ इन्द्र महाराजा के मुख से सनत्कुमार चक्रवर्ती के रुप की प्रशंसा को सुनकर दो देवता उनके रुप को देखने के लिए ब्राह्मण का वेश धारण करके पृथ्वी लोक पर आये । जब दोनों ब्राह्मण वेशधारी देवता ने राजभवन में प्रवेश किया तब चक्रवर्ती स्नानगृह में थे । अल्प वस्त्र में भी उनका रुप अति सुंदर था ।

चक्रवर्ती ने कहा, 'यदि रुप देखना हो तो जब मैं सज-धज कर राजसिंहासन पर बैठूं, तब आना।' जैसे ही चक्रवर्ती अपने राजसिंहासन पर बैठे और दोनों ब्राह्मणों ने प्रवेश किया, तब चक्रवर्ती को देखते ही दोनों ने अपना मुंह घुमा दिया ।

चक्रवर्ती ने पूछा तो ब्राह्मणों ने कहा, `अब देखने जैसा कुछ नहीं बचा है । आपके शरीर में महाभयंकर 16 रोग पैदा हुए है ।'

रुप के मान के फलस्वरुप सनत् चक्रवर्ती को 700 वर्षों तक 16 महारोग सहन करने पडे ।

❖ पूर्व जन्म में मासक्षमण के पारणे मासक्षमण करने वाले कुरगडु मुनि को तप के अभिमान के कारण संवत्सरी के दिन भी नवकारशी करनी पडी । एक दिन भी उपवास करना उनके लिए अशक्य बन गया था ।

❖ **भगवान महावीर का अपूर्व सामैया करने वाले राजा दशार्णभद्र ने अपनी ऋद्धि का अभिमान किया परंतु कुछ ही क्षणों में इन्द्र महाराजा ने अपने ऐरावण हाथी के आठ दांतों पर आठ-आठ बावडियों में आठ-आठ कमलों की प्रत्येक पंखुडी पर 32-32 नाटक दिखाकर दशार्णभद्र के अभिमान को नष्ट कर दिया ।**

❖ अपनी बहन साध्वियों को अपनी विद्या का प्रदर्शन करने के लिए सिंह का रुप करनेवाले स्थूलभद्र महामुनि ने शेष 4 पूर्वों का मात्र सूत्र से ज्ञान प्राप्त किया । उसके अर्थ बोध की उन्हें अनुज्ञा प्राप्त नहीं हुई ।

❖ **छह खंड का साम्राज्य पाकर असंतुष्ट होकर लाभ के अभिमान**

में मत्त हुए सुभूम चक्रवर्ती सातवां खंड तो नहीं पा सका परंतु मरकर सातवी नरक में चला गया ।

इस तरह अभिमान के अनर्थ को जानकर आत्मरंजन के इच्छुक मुनि भगवंत मान कषाय से मुक्त रहने का प्रयत्न करते है ।

5) संतोष की पुष्टि से इच्छामुक्ति–संतोष गुण लोभ कषाय का प्रतिपक्षी है । लोभ कषाय आत्मा के सभी गुणों का नाश कर देता है ।

प्रशमरति ग्रंथ में वाचकवर्य **श्री उमास्वातिजी महाराज** कहते है, `क्रोध से प्रेम का नाश, मान से विनय का नाश, माया से विश्वास का नाश और लोभ से सभी गुण नष्ट हो जाते है । लोभ में अंध बना व्यक्ति कौना सा पापाचरण नहीं करता है ? यह एक सवाल है ।

चारों कषाय में क्रोध यदि इन्जन है तो लोभ गार्ड है । लोभ के कारण ही व्यक्ति माया करता है । व्यक्ति थोडा सा पाकर अभिमान करता है और अभिमान की हानि होने पर क्रोध करता है । दुनिया में भी लोभ को पाप का बाप कहा है ।

दशवैकालिक में इन चार कषायों को जीतने की प्रेरणा देते हुए कहा है–

उवसमेण हणे कोहं, माणं मद्दवया जिणे ।
मायं चाऽऽज्जव-भावेण, लोभं संतोसओ जिणे ।।

अर्थ :– उपशम भाव से क्रोध का नाश करे, नम्रता से मान को जीते, सरल भाव से माया को जीते और लोभ को संतोष गुण से जीते ।

इस तरह जिन्होंने सभी कषायों को जीता है एवं अपनी इच्छाओं को वश कर तत्त्वमार्ग पर चले है, वे दुनिया को नहीं लेकिन अपनी आत्मा को प्रसन्न करते हैं । दुनिया को प्रसन्न करने के कार्य में परापेक्षा होने से दीनता ही प्राप्त होती है । **जबकि स्वात्मा को प्रसन्न करने के लिए किसी वस्तु या व्यक्ति की अपेक्षा न होने से निजानंद प्राप्त होता है । ऐसे मुनि संसार में रहकर भी मोक्ष के सुख का अनुभव करे, इसमें क्या आश्चर्य है ।**

आत्म रमणता का सुख

तावद्विवादी जनरञ्जकश्च,
यावन्न चैवात्मरसे सुखज्ञः ।
चिन्तामणिं प्राप्य वरं हि लोके,
जने जने कः कथयन् प्रयाति ।।23।। (उपजाति)

शब्दार्थ

तावत्=तब तक,
विवादी=विवाद करने के स्वभाववाला,
जनरञ्जकः=दुनिया को खुश करनेवाला,
च=और,
यावत्=जब तक,
न=नहीं,
चैव=और निश्चय से,
आत्म रसे =आत्म रमणता में,
सुखज्ञः=सुख को जानता है,
चिन्तामणि=मनवाछिंत देनेवाला मणि,
प्राप्य=प्राप्त करके,
वरं=श्रेष्ठ,
हि=वास्तव में,
लोके=जगत् में,
जने-जने=लोगों के बीच में,
कः=कौन,
कथयन्=कहता हुआ,
प्रयाति=भटकता है ।

गाथार्थ

साधक जब तक आत्म-रमणता में रहे सुख को नहीं जानता है, तब तक ही वाद-विवाद एवं दुनिया को खुश करने के स्वभाव वाला रहता है । वास्तव में मन वांछित फल देने वाले चिन्तामणि को प्राप्त करके कौन लोगों के बीच कहता हुआ भटकता है ?

विवेचन

छोटी उम्र में बालक धुल में खेलता है , रेती का घर बनाता है, मिट्टी को मुख में डालकर उसे भी खा लेता है । लेकिन उम्र बढने के बाद जब उसे इन चेष्टाओं को करने के लिए कहा जाय तो वह उन्हें बालिश चेष्टा कहकर अपना मुंह बिगाड देता है । **भौतिक जगत् में व्यक्ति को विवेक की प्राप्ति उम्र के बढने एवं प्रशिक्षण से प्राप्त होती है, वैसे ही आत्मिक जगत् में विवेक की प्राप्ति आत्मरमणता से प्राप्त होती है ।** मोक्षमार्ग में प्रवेश करने के बाद साधक को जब तक आत्म-रमणता का सुखास्वाद प्राप्त नहीं होता है, तब तक छोटी-बडी बातों में अन्य से वाद-विवाद करना, अपना ज्ञान, अपना पुरुषार्थ, अपनी शारीरिक, **मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियों का प्रदर्शन करके लोगों को आकर्षित करने जैसी बाह्य प्रवृत्ति का स्वभाव रह सकता है,** लेकिन आत्मरमणता का आंशिक भी रसास्वाद होने के बाद इन वाद विवाद एवं लोक रंजन की प्रवृत्तिओं का स्वभाव छुट जाता है ।

आत्मरमणता प्राप्त कराने वाला प्रत्येक गुण अथवा गुण प्राप्त करनेवाली प्रत्येक साधना, साधक के लिए महामूल्य चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति से भी बढ़कर है । **अरे ! चिन्तामणि रत्न, कामकुंभ, कामधेनु अथवा कल्पवृक्ष की विशेषता तो मात्र इच्छापूर्ति एवं भौतिक रिद्धि सिद्धि प्रदान करने की है । उनकी प्राप्ति से आत्मा को एकांत लाभ ही होगा ऐसा कोई नियम नहीं है ।** इनकी प्राप्ति के बाद इनका दुरुपयोग करे तो व्यक्ति इस जन्म में तो दु:खी होगा और परलोक में भी दुर्गति में जा सकता है । आत्मरमणता कराने वाले सम्यक्त्व, देशविरति और सर्वविरति के परिणाम तथा क्षमा, नम्रता, सरलता, संतोष आदि गुण एवं अनित्यादि 12 भावनाएँ और मैत्री आदि 4 भावनाएँ आत्मा के लिए एकान्त हितकारी है ।

भूखे व्यक्ति को घेबर का भोजन, प्यासे व्यक्ति को शीतल जल, मरुभूमि में तप्त हुए व्यक्ति को वृक्ष की छाया, सागर में डूबते व्यक्ति को नाव का सहारा, धनहीन व्यक्ति को पारसमणि रत्न, अमावस्या की रात्रि

में घोर अंधेरे में रहे व्यक्ति को दीपक, जंगली जानवरों से भरे जंगल में भटकते व्यक्ति को सुरक्षित मकान की प्राप्ति जितनी दुर्लभ है, उससे भी अति दुर्लभ है चारगति रुप संसार में भ्रमण करती आत्मा को सद्गुणों की प्राप्ति ।

संसार चक्र में अति दुर्लभ इन सद्गुणों की प्राप्ति होने के बाद जो इनकी कीमत नहीं जानता है, वह हाथ में आये चिन्तामणि रत्न को कौए उडाने के लिए फेंक देने जैसी मुर्खता कर बैठता है । लोक रंजन के कार्य करने के लिए प्राप्त हुए सद्गुणों को बढाने के बजाय खोने का कार्य कर देता है, परंतु जो इन गुणरत्नों की कीमत समझता है, वह तो इन गुणरत्नों की सुरक्षा और वृद्धि में निरंतर प्रयत्नशील रहता है । साधकों को अन्य किसी कार्य में जुडना अत्यंत कटु लगता है । **ज्ञानसार** ग्रंथ के मग्नता अष्टक में महामहोपाध्याय **श्री यशोविजयजी** यही बात कहते है–

यस्य ज्ञान सुधासिन्धौ, परब्रह्मणि मग्नता ।
विषयान्तर-संचारस्तस्य हालाहलोपमः ।।

अर्थात्– जिसे ज्ञान के अमृत सागर ऐसे परब्रह्म स्वरुप में आत्मरमणता लीनता होती है, उसे अन्य विषयों में हो रही प्रवृत्ति जहर के समान अनिष्ट लगती है ।

जीवन में अनेक उतार-चढाव के बीच जब रोग, स्वप्न एवं जातिस्मरण ज्ञान के द्वारा एक बार आत्मरमणता का अनुभव करके जीवन में आमूल चूल परिवर्तन करने वाले नमि राजर्षि के जीवन से यही प्रेरणा मिलती है ।

नमि राजर्षि

''जा, जाकर कह दे उस नन्हें बालक तेरे नमि राजा को, मैं उसे हाथी तो क्या उसका एक इंच मात्र भी जगह भी बिना युद्ध के देने वाला नहीं हूँ । क्या वह नीतिशास्त्र की यह बात नहीं जानता है कि राज्य लक्ष्मी तो वीर भोग्या होती है ।''

मालवदेश में सुदर्शनपुर के **चन्द्रयश राजा** ने मिथिला नगरी के नमि राजा के दूत का तिरस्कार करते हुए मुंहतोड जवाब दिया । चन्द्रयश राजा, **युवराज युगबाहु** और **महासती मदनरेखा** का पुत्र था ।

राजा मणिरथ ने अपने छोटे भाई की पत्नी मदनरेखा का रुप देखा, वह उसमें आसक्त हो गया । पहले तो उसे मनाने के लिए मणिरथ कीमती उपहार भेजने लगा ।

मदनरेखा भी अपने जेठ से प्राप्त हुई भेंट स्वीकार करने लगी । थोडे दिन भेंट भेजकर दासी के मुख उसने अपने मन की बात बताई । यह बात सुनकर मदनरेखा चौंक उठी और स्पष्ट शब्दों में इन्कार कर दिया । रुप में आसक्त मणिरथ ने मदनरेखा को पाने के लिए छल से अपने छोटे भाई की छाती में छूरी भौंक दी ।

आपत्ति में भी चित्र को स्वस्थ रखकर मदनरेखा ने अपनी पति को अंतिम निर्यामणा कराई । शील की रक्षा के लिए वह वन में चली गई । वन में गर्भवती मदनरेखा ने पुत्र को जन्म दिया । शारीरिक शुद्धि के लिए वह नदी के किनारे गई ।

तब उसके रुप में आसक्त **मणिप्रभ विद्याधर** ने उस का अपहरण कर दिया । नदी किनारे रहे उस बालक को मिथिला नगरी का **राजा पद्मरथ** लेकर चला गया और उसका नाम **नमिकुमार** रखा । पद्मरथ राजा की दीक्षा के बाद उसे मिथिला नगरी का राजा बनाया गया ।

इस ओर छोटे भाई युगबाहु की हत्या के बाद सांप के कांटने से **मणिरथ** की मृत्यु हो गई । मणिरथ का राज्य मदनरेखा के बडे पुत्र **चन्द्रयश** को दिया गया । इस तरह मदनरेखा के दोनों पुत्र अलग-अलग नगर के राजा बन गए । चन्द्रयश, सुदर्शनपुर का और नमि, मिथिला का । दोनों न्याय नीति से राज्य का संचालन करते थे ।

एक दिन नमिराजा का श्वेत पट्ट हाथी अपने आलान स्तंभ को उखाड कर विंध्या अटवी में चला गया । **योगानुयोग उसी समय चन्द्रयश राजा भी विंध्या अटवी में घुमने के लिए गया हुआ था ।** श्वेत हाथी को देखकर वह खुश हो गया । उसने उस हाथी को पकड लिया और अपने नगर में ले आया ।

गुप्तचरों के माध्यम से जैसे ही नमिराजा को इस बात का पता चला

कि उसका पट्ट हस्ती सुदर्शनपुर के राजा चन्द्रयश ने पकड लिया है, वैसे ही उसने चन्द्रयश राजा के प्रति अपना पट्ट हस्ती वापस लौटाने के लिए दूत भेजा । **दूत ने जाकर राजा को कहा कि हमारे नमिराजा का हाथी वापस लौटा दो, तब अपना आक्रोश बताते हुए उपरोक्त वाक्य बोलकर राजा चन्द्रयश ने जवाब दिया था ।**

दूत ने राजा को कह दिया–`आप यदि हाथी नहीं लौटाओगे तो मेरा स्वामी युद्ध में आपको मारकर भी वह हाथी लिये बिना नहीं रहेगा । इस छोटी सी बात को लेकर दोनों राजाओं के बीच भयंकर युद्ध की तैयारी हो गई । नमिराजा ने अपने विशाल सैन्य के साथ सुदर्शनपुर को घेर लिया । परंतु ज्योंही युद्ध के मैदान में चन्द्रयश राजा को माता साध्वी मदनरेखा के द्वारा पता चला कि **नमि राजा उसका छोटा भाई है,** उसने संसार से विरक्त होकर अपने हथियार को छोड दिये और नमिराजा को अपना राज्य सौंपकर दीक्षा ले ली ।

नमिराजा न्याय और नीतिपूर्वक दोनों राज्य का पालन करने लगे । एक दिन नमिराजा के शरीर में भयंकर दाह रोग पैदा हो गया । छह-छह महिनों तक अनेकानेक वैद्यकीय चिकित्सा करने पर भी उसके स्वास्थ्य में लेश भी सुधार नहीं हुआ । न दिन में चैन न रात में नींद । **नमि राजा शय्या में पडे-पडे भयंकर वेदना से तडप रहा था । कई इलाज किये गए, अंत में चन्दन के लेप से उन्हें शीतलता का अनुभव होने लगा । पुरे राजपरिवार ने राहत की साँस ली ।**

सभी राजरानियों ने महाराजा नमि की शान्ति के लिए चन्दन घिसना चालू किया । चन्दन घिसते समय राजरानियों के हाथों में रहे कंकण परस्पर टकराने लगे, कंकण के टकराने की आवाज राजा सहन नहीं कर सके ।

वे चिल्ला उठे अहो ! यह कर्णभेदी आवाज क्यो हो रही है ? मंत्रीश्वर ने चन्दन घिसने की बात की । फिर आवाज को शांत करने के लिए राजरानियों ने अपने हाथों में एक-एक कंकण रखकर शेष कंकण उतार दिया । चंदन घिसना शुरु किया ।

इस बात से अज्ञात महाराजा ने महामंत्री से पूछा, `क्या चन्दन घिसना बंद हो गया है । देखो, अभी चन्दन घिसने की आवाज क्यों नहीं आ रही है ?

महामंत्री ने कहा, `राजन् ! चन्दन का घिसना बंध नहीं हुआ है । किन्तु राजरानियों ने एक कंकण को छोडकर शेष कंकण उतार दिये है । **जहाँ दो से ज्यादा कंकण होते है, वहाँ टकराव होता है । अकेला कंकण किससे टकराएगा ?**

मंत्रीश्वर की बात सुनकर नमिराजा को आत्म चिन्तन की नई दिशा मिल गई । वे सोचने लगे **'एक में शांति है, अनेक में संघर्ष है ।'** इस चिन्तन में वे आगे बढे ।

आध्यात्मिक जगत् में भी यह बात इतनी ही सत्य है । उनके चेहरे पर परम शांति और प्रसन्नता छाने लगी । आत्मरमणता के सुखास्वाद में वे लीन बन गए । मन-ही-मन वे दृढ निश्चय कर बैठे कि **''यदि मैं इस वेदना से मुक्त हो जाऊँ तो प्रातः काल में ही संसार के सारे बंधनों को छोडकर संयम मार्ग का पथिक बन जाऊँगा ।''**

दृढ संकल्प के प्रभाव से उनका अशाता वेदनीय कर्म दूर हो गया । शाता का अनुभव करते हुए महाराजा निद्राधीन हो गए । **रात्रि के अंतिम प्रहर में महाराजा ने स्वप्न में अपने आपको मेरुपर्वत पर घूमते हुए देखा । इस स्वप्न को देखने से उन्हें जातिस्मरण ज्ञान प्रकट हो गया ।** पूर्व जन्म में उनकी आत्मा ने साधु जीवन का पालन कर समता को आत्मसात् किया था । उसके बाद देवता बनकर सैकडों तीर्थंकरों के जन्म महोत्सव प्रसंग पर मेरुपर्वत पर जन्माभिषेक किया था ।

जातिस्मरण ज्ञान होने से उनका वैराग्य भाव और दृढ हो गया । **एक हाथी को पाने के लिए भयंकर युद्ध करने के लिए तैयार हुए नमि राजा आज विशाल राज्य को एक तृण की तरह छोडने के लिए तैयार हो गए ।** प्रातः काल होते ही उन्होंने अपना दृढ निश्चय मंत्रीमंडल एवं राज परिवार को बताकर त्याग मार्ग का स्वीकार कर लिया ।

राजपरिवार आक्रन्द करने लगा । चारों ओर विलाप की आवाज

सुनाई दे रही थी । अन्त:पुर की राजरानियाँ अपने स्वामीनाथ को मनाने का अथक प्रयास करने लगी, परंतु नमिराजा टस से मस नहीं हुए । सांप की कंचुकी की तरह संसार को छोड आत्मरमणता में लीन बन गए ।

उनकी दृढता को देखकर इन्द्र महाराजा ब्राह्मण का वेष करके उनकी परीक्षा करने के लिए आये ।

मिथिला नगरी को जलती हुई बताकर पूछा, `देखों, नगर में चारो ओर आग लगी है । सभी मिथिलावासी आक्रन्द कर रहे है, अरे ! आपका पुरा अन्त:पुर जल रहा है । तो फिर आप उनकी उपेक्षा क्यों कर रहे हो ?

ब्राह्मण को जवाब देते हुए नमि राजर्षि ने कहा–**``मिहिलाए डज्झमाणीए न मे डज्झइ किंचण ।''** अर्थात् मिथिला के दहन से मेरा कुछ भी नहीं जल रहा है, क्योंकि मिथिला की संपत्ति मेरी संपत्ति नहीं है । मैं तो ज्ञान-दर्शन और चारित्र की अखूट संपत्ति का मालिक हूँ । मेरी अंतरंग संपत्ति को जलाने की ताकत किसी में नहीं है । **``जो मेरा है, वह कभी जलता नहीं है, और जो जलता है, वह मेरा नहीं है ।''**

अनेक प्रश्नोत्तर के संवाद से नमि राजर्षि ने ब्राह्मण को अपने वैराग्य के पक्के रंग में हुए आत्मरमणता के सुस्वाद का परिचय, दिया । अंत में इन्द्र महाराजा ने अपना मूल स्वरुप प्रकट कर नमिराजर्षि को भावभरी वंदना की ।

आत्मरमणता के सुखास्वाद को पाने के बाद संसार और संसार के सभी आकर्षण छोडने नहीं पडते, परंतु स्वत: छूट जाते है । फिर जो आनंद का अनुभव होता है, उसे कोई भी साधक किसी को नहीं कहता है ।

श्री शांतिनाथ प्रभु के स्तवन में वाचकवर्य **श्री यशोविजयजी** ने गाया है–

जिनही पाया तिनही छीपाया, न कहे कोई के कान में,
ताली लागी जब अनुभव की, तब समझे कोई सान में ।।

हम मगन भये प्रभु ध्यान में...

आत्मरमणता का अनुभव पाकर सभी जीव परमपद की प्राप्ति में प्रयत्नशील बने, लोक रंजन को छोड आत्मरंजन में लीन बने ।

मन स्वस्थ तो सभी मस्त

षण्णां विरोधोऽपि च दर्शनानां,
तथैव तेषां शतशश्च भेदाः ।
नानापथे सर्वजनः प्रवृत्तः,
को लोकमराधयितुं समर्थः ।।24।। (उपजाति)

शब्दार्थ

षण्णां दर्शनानां=छह दर्शनों के,
विरोधः=परस्पर मतभेद है,
अपि च=और वापस (पूर्व श्लोक के संबंध में),
तथैव=जैसे विरोध है वैसे,
तेषां=उनके,
शतशश्चभेदा=सैकडों भेद है,
नानापथे=विविध मार्ग में,
सर्वजनः=दुनिया के सभी लोग,
प्रवृत्तः=जुडे हुए है,
को=कौन,
लोकमाराधयितुं=दुनिया को खुश करने के लिए,
समर्थः=शक्तिशाली है ।

गाथार्थ

जैन, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य और मीमांसक रुप छह दर्शनों के आपस में अनेक मतभेद है और जैसे मतभेद है, वैसे उनके सैकड़ों भेद-प्रभेद भी है । दुनिया के लोग विविध मार्ग में जुडे हुए हैं, इसलिए उन्हें खुश करने के लिए कौन समर्थ है ? (अर्थात् कोई नहीं ।)

विवेचन

''मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना'' दुनिया में जितने व्यक्ति है, उनकी सभी की विचारधाराएँ भिन्न भिन्न है। कुछ जीव स्वानुभव प्राप्त कर अपनी विचारधारा बनाते है, तो कुछ पूर्व में हुए आदर्श व्यक्तियों के जीवन को जानकर उनका अनुसरण करते है। वर्तमान विश्व में अलग-अलग विचारधारा वाले लगभग 1500 प्रकार के धर्म है। आत्मा, परलोक, पुण्य-पाप, स्वर्ग-नरक आदि अतीन्द्रिय पदार्थों पर विश्वास करने वाले लोग भी बहुत है, तो इन पर विश्वास नहीं करके इन्हें मात्र मतिकल्पना कहकर झूठलाने वाले लोग भी बहुत है।

भारत देश में भी प्राचीन मान्यताओं के अनुसार मुख्यतया जैन, बौद्ध, नैयायिक, वैशेषिक, सांख्य और मीमांसक दर्शनों की भिन्न-भिन्न मान्यताएँ है। इन मान्यताओं में अतीन्द्रिय पदार्थों पर श्रद्धा और विश्वास के साथ-साथ परस्पर विरोधी मत भी देखे जाते हैं।

वापस इन एक-एक दर्शनों में अन्य छोटे-बडे कई मतभेद हैं। दुनिया के लोग इन अनेक मतों को प्राप्त करके इनमें जुड जाते हैं। उनकी जीवनशैली में बदलाव करने के लिए यदि कोई व्यक्ति प्रयत्न करे तो भी सभी में बदलाव लाने के लिए कोई समर्थ नहीं है।

ग्रंथकारश्री लोकरंजन की प्रवृत्ति को छोडकर आत्मरंजन में प्रवृत्त होने के लिए इस श्लोक द्वारा विशेष प्रेरणा दे रहे हैं।

षड्दर्शन की विविध मान्यताओं को एकांत से पकडने वालों की क्या दशा होती है उस पर कथारत्नाकर ग्रंथ में बताए चार ब्राह्मणों का दृष्टांत–

चार ब्राह्मण

हरिस्थल नाम के गांव में चार ब्राह्मण रहते थें। वे भिन्न-भिन्न मान्यताओं के अनुसार पहला न्याय शास्त्र, दूसरा ज्योतिष शास्त्र, तीसरा व्याकरण शास्त्र और चौथा वैद्यक शास्त्र के ज्ञाता थें।

चारों ब्राह्मण मित्र होने पर भी अपनी-अपनी विद्या पर अभिमान करते थें । एक दिन कौतुक से चारों मित्र जरुरी सामग्री को बैल गाडी में भरकर परदेश देखने के लिए चल पडे ।

मार्ग में चलते हुए भोजन करने के लिए वे एक विश्राम स्थल पर पहुँचे । भोजन की तैयारी करने के लिए चारों ब्राह्मण ने अपना-अपना कार्य विभाजन करते हुए क्रमशः घी लाने का, बैल चराने का, भोजन पकाने का एवं सब्जी लाने का कार्य बांट लिया ।

सबसे पहला न्याय शास्त्र का ज्ञाता ब्राह्मण घी लेकर वापस लौटते समय मनोमन तर्क-वितर्क विचार करने लगा । **''क्या घी बर्तन का आधार है या बर्तन घी का आधार है ?''** इस प्रकार विचार विमर्श करता हुआ वह बर्तन को ऊपर नीचे करने लगा । अंत में उसने बर्तन को उल्टा करके सारा घी नीचे गिरा दिया । सारा कीमती घी मिट्टी में मिल गया ।

दूसरा निमित्तशास्त्र का ज्ञाता ब्राह्मण बैलों को चराने के लिए जंगल में ले गया । वहाँ जाकर उसने सभी बैलों को चारा चरने के लिए छोड दिया । वृक्ष के नीचे बैठकर वह अपनी ज्योतिष विद्या के अनुसार उन बैलों के वापस आने की राह देखता हुआ ग्रह-नक्षत्र का विचार करने लगा । बैल वापस आएंगें या नहीं ? उसकी कुण्डली बनाने लगा । ऐसे में वे बैल दूर-दूर चले गए । ब्राह्मण बैल लिए बिना ही वापस लौट आया ।

तीसरा व्याकरण शासन का ज्ञाता ब्राह्मण भोजन पकाते समय खद्-खद् शब्द करती हुई खीचडी को देखकर विचार करने लगा कि यह **''खद्-खद्''** शब्द व्याकरण के किस नियम से बना है ? इस प्रकार विचार करते हुए उसका ध्यान भटक गया और उसकी सारी खीचडी जल गई ।

अब चौथा आयुर्वेद आदि वैद्यक शास्त्र का ज्ञाता ब्राह्मण सब्जी लेने के लिए बाजार में गया । मार्ग में चलते हुए विविध प्रकार के फल एवं सब्जियों को देखकर सोचने लगा–अहो ! ये सारे फल और सब्जियाँ वात-पित्त और कफ को बढाकर शरीर में रोग पैदा करते है, अतः इन सभी को लेने के बजाय नीम खरीदता हूँ ।

इस कलिकाल में नीम वृक्ष ही साक्षात् कल्पवृक्ष के समान है । इससे वात-पित्त और कफ तीनों के विकार नाश होते है । साथ ही भोजन को जल्दी पाचन करके आरोग्य देने वाला है । ऐसा निश्चय कर अन्य सब्जियों को छोडकर नीम के पत्ते और निंबोडी लेकर आया ।

चारों ब्राह्मण दुःखी होकर अपने-अपने घर लौट आये । इनके दुःख का कारण यहीं था कि वे व्यवहार ज्ञान से अज्ञात थे और अपनी अपनी विद्या से अभिमानी बने हुए थे ।

वास्तव में षट्दर्शन, केवलज्ञान प्राप्ति के बाद अलग-अलग नय-निक्षेपों से प्रदत्त देशना को एकांगी पकडकर निकले हुए पंथ है ।

अंधें पुरुष हाथी का ज्ञान करने के लिए उसके अलग अलग अंग को पकडकर अपना मत बताते है ।

पहले ने हाथी की पूंछ को पकडकर कहा, **''हाथी एक रस्सी जैसा है।''**

दूसरे ने हाथी के पेट का स्पर्श कर कहा, **''हाथी दिवाल जैसा है ।''**

तीसरे ने हाथी का पैर पकडकर कहा, **''हाथी खंभे जैसा है ।''**

चौथे ने हाथी के कान पकडकर कहा, **''हाथी सुपडे जैसा है ।''**

पांचवें ने हाथी की सुंड को पकडकर कहा, **''हाथी तलवार जैसा है ।''**

यदि ये सभी आपस में मिलकर अपने अपने मतानुसार वाद-विवाद करते रहे तो कभी भी हाथी के असली स्वरुप के ज्ञाता नहीं बन सकते । क्योंकि ये सभी अधुरे है और अंध है । हाथी का सच्चा स्वरुप तो वही बता सकता है, जिसने हाथी को स्पष्ट रुप से आँखों से देखा है ।

यदि ये व्यक्ति आपस में मिलकर अपने अपने कदाग्रह को छोडकर अन्य के मत का सहर्ष स्वीकार करे तो ये व्यक्ति अंध होने पर भी समष्टिगत रुप से हाथी का सच्चा स्वरुप जान सकते है ।

जैन दर्शन आँखो से देखते निर्मल दृष्टि वाले पुरुष जैसा है । क्योंकि वह केवली द्वारा प्ररुपित है । जबकि अन्य दर्शन अंध पुरुष जैसे अधूरे ज्ञानी है । जगत् के सच्चे स्वरुप को जानने में विकल यदि वे जैन दर्शन की मान्यता का स्वीकार करे तो ही पूर्ण ज्ञानी बन सकते है । परंतु वे अपना कदाग्रह छोडे तो न !

वैसे ही दुनिया में अनेक पंथ, संप्रदाय और विचार धारा के लोग रहे हुए है । जैसे हाथ की पांचों अंगुलियाँ एक समान नहीं है, वैसे सबके मत भी एक समान नहीं हैं । **ऐसी स्थिति होने पर यदि कोई एक व्यक्ति सभी लोगों को एक विचारधारा में जोडने का प्रयत्न करे और यदि उसके पास में वैसा पुण्य का पीठ बल नहीं हो, तो उसे निराशा और दुःख के अलावा कुछ भी प्राप्त नहीं होगा ।** ग्रंथकारश्री इसी भावना से साधक को आत्म साधना में लीन बनने के लिए प्रेरणा दे रहे है । सभी को खुश करने की ताकत किसी में नहीं है । अतः अन्य को सुधारने से पहले अपनी साधना में स्थिर बनो ।

स्वयं तीर्थंकर परमात्मा भी दीक्षा लेने के बाद मनः पर्यवज्ञानी होने पर भी जब तक केवलज्ञान प्राप्त नहीं करते है, तब तक पूर्णतया मौन रहते है । मुख से कुछ बोलना तो दूर रहा, वे किसी को कोई ईशारा भी नहीं करते है । मात्र अपनी अंतरंग साधना में लीन रहते है ।

श्री ऋषभदेव स्वामी

प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी ने चैत्र वद-8 के शुभ दिन दीक्षा स्वीकार की । 4000 पुण्यात्माओं के साथ प्रभु ने चार मुष्टि लोंच करके दीक्षा ली । दीक्षा लेते ही प्रभुजी को मनःपर्याय ज्ञान की प्राप्ति हुई । दूसरे दिन का प्रभुजी भिक्षा के लिए नगर में परिभ्रमण किया, परंतु प्रजा को भिक्षा विधि का बोध न होने से और प्रभु के पूर्वभव में बंधे लाभांतराय कर्म का उदय होने से प्रभु को भिक्षा नहीं मिली । **प्रभु का अनुकरण करते हुए 4000 साधुओं ने भी प्रभु के साथ उपवास कर लिया । इस तरह अनुकरण करते हुए कुछ दिन तो बीते, परंतु 4000 साधुओं के लिए भूख-प्यास की वेदना सहन करना अशक्य हो गया ।** साधना में लीन रहे प्रभु से उन्होंने भोजन-पानी का उपाय पूछा, परंतु प्रभु मौन रहे । एक बार नहीं, बार-बार पूछा । एक ने नहीं प्रायः सभी ने पूछा, फिर भी प्रभु मौन रहे ।

जब उनकी सहनशीलता की सीमा पूर्ण हो गई, तब पहले तो उन्होंने पुनः घर जाने का निर्णय किया, परंतु भरत महाराजा की लज्जा से वे घर नहीं गए। प्रभु के सामने ही संयम जीवन की मर्यादाओं का भंग करते हुए जंगलों के पेडों से फलाहार करने लगे। फिर भी प्रभु मौन रहे।

साधु मिटकर तापस बन गए, फिर भी प्रभु मौन रहे। आगे चलकर ठंडी-गर्मी सहन करने में असमर्थ बनने पर वृक्ष की छाल से वस्त्र बनाकर रहने लगे। फिर भी प्रभु मौन रहे। कारण एक ही था, पहले स्वात्मकल्याण फिर जगकल्याण।

यदि प्रभु एक समस्या का समाधान करते तो वे दूसरी समस्या पूछते। दूसरी का समाधान करते, तो तीसरी पूछते। ऐसा चलता रहता तो प्रभु की साधना कभी पूरी नहीं हो पाती। इतना ही नहीं बल्कि जो केवलज्ञान प्रभु ने 1000 वर्ष तक साधना करके प्राप्त किया, वह शायद लाखों वर्षों में भी प्राप्त नहीं कर पाते। इसलिए प्रभु मौन रहे।

अपने ज्ञान में प्रभु ने शायद यही जाना होगा कि केवलज्ञान प्राप्त करके इन्हें प्रतिबोध देना। इनकी वर्तमान में उपेक्षा करने से ज्यादा लाभ होगा और ऐसा ही हुआ। केवलज्ञान प्राप्त होने पर उन 4000 तापसों ने प्रभु के पास आकर आत्मकल्याण कर लिया।

जमाली

महोपाध्याय **श्री विनय विजयजी** ने शांत सुधारस ग्रंथ की माध्यस्थ्य भावना में प्रभु महावीर स्वामी और जमाली के दृष्टांत को देते हुए भी यही बात की है कि जमाली सांसारिक पक्ष में प्रभु महावीर के भांजे और जमाई थे, एवं दीक्षा के बाद प्रभु के शिष्य थे। फिर भी जब उन्होंने प्रभु से स्वतंत्र विहार की अनुमति मांगी तब उनके भावी को अशुभ जानकर प्रभु मौन रहे।

प्रभु के मौन को मुक सम्मति समझकर उन्होंने अपने शिष्य वृंद के साथ विहार किया। आगे चलकर एक छोटी सी बात को लेकर वे प्रभु के मत का ही खंडन करने लगे। इतना ही नहीं वे प्रभु के विरोधी बन गए।

प्रभु की पुत्री सुदर्शना जो जमाली के साथ प्रभु के हाथों से दीक्षित हुई थी, वह भी प्रभु के पथ को छोडकर अपने पति मुनि जमाली के साथ जुड गई । **दोनों ने प्रभु का विरोध किया । प्रभु ने अपने ज्ञान से उनकी भवितव्यता को जानकर न तो उन्हें उपदेश दिया, न ही अपने शिष्य गौतमस्वामी आदि किसी को भेजकर प्रतिबोध दिया ।**

अहो ! कितना बडा आश्चर्य है, प्रभु महावीर स्वामी ने अपने साधना काल में शुलपाणि यक्ष, चण्डकौशिक सर्प आदि को प्रतिबोध देने के लिए मरणांत कष्ट सहन किये । मौन साधना में लीन होने पर भी चण्डकौशिक को **''बुज्झ, बुज्झ चंडकौसिया !''** बोल कर प्रतिबोध दिया ।

16 वें भव के चचेरेभाई-विशाखानंदी, 18 वें भव में अपने हाथों से शिकार बने सिंह और 27 वें भव में साधना काल में रहे प्रभु पर उपसर्ग करने वाले सुदंष्ट्र यक्ष, जो आगे चलकर किसान बना था, उसे प्रतिबोध करने के लिए भी गौतमस्वामी को भेजा था ।

परंतु महावीर स्वामी अपने भांजे, जमाई और शिष्य-जमाली के विषय में मौन रहे ! उसे शासन से बाहर करके निह्नव घोषित किया, जिससे अन्य जीव मार्ग से भ्रष्ट न हो, परंतु प्रभु ने उसे कुछ नहीं कहा ! क्योंकि उसकी भवितव्यता ही ऐसी थी ।

आगे चलकर सुदर्शना साध्वी ढंक श्रावक के द्वारा प्रतिबोध पायी । प्रभु के पास आकर उसने अपनी भूल स्वीकार की । जमाली को समझाने का प्रयत्न करने पर भी वह नहीं माना । अंत में सुदर्शना साध्वी केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में गई । जमाली भी 15 दिन के अनशन के बाद विराधक होने से किल्मिषिक देव के रुप में उत्पन्न हुआ । 15 भवों तक संसार में परिभ्रमण करके मोक्ष में जाएगा ।

ग्रंथकारश्री इस श्लोक से हमें भी मौन होने की प्रेरणा दे रहे है । यदि दुनिया के लोग किसी न किसी मत में कदाग्रही है, उन्हें दिया हुआ सदुपदेश भी सांप को दुध पिलाने समान निरर्थक ही होता हो तो मौन रहना ही हितकारी है । सभी के सुख प्राप्ति की भावना कर सकते है, परंतु सभी को सुखी करना अशक्य है । अतः लोक रंजन को छोड आत्मरंजन में प्रयत्नशील बने ।

योगिओं की अनोखी बातें

तदेव राज्यं हि धनं तदेव,
तपस्तदेवेह कला च सैव ।
स्वस्थे भवेच्छीतलताशये चेद्,
नो चेद् वृथा सर्वमिदं हि मन्ये ।।25।। (उपजाति)

शब्दार्थ

तदेव=वही,
राज्यं=सत्ता,
हि=वास्तव में,
धनं=संपत्ति,
तपः=बाह्य-अभ्यंतर रुप 12 प्रकार का तप,
कला=जीवन शैली,
च=और,
सैव=वही,
स्वस्थे=संकल्प-विकल्प रहित अवस्था में,
भवेत्=हो,
शीतलता=शांति,
आशये=मन में,
चेद्=यदि,
नो=नहीं,
वृथा=निष्फल,
सर्वं=सभी,
मन्ये=ऐसा मैं मानता हूँ ।

गाथार्थ

यदि मन में संकल्प-विकल्प रहित स्वस्थता और शांति है, तो ही राज्यसत्ता, धन-संपत्ति, बाह्य-अभ्यंतर रुप 12 प्रकार का तप और जीवन जीने की कला सार्थक है और यदि मन में अस्वस्थता और अशांति है, तो राज्यसत्ता, धन-संपत्ति, तप और कला भी निरर्थक है, ऐसा मैं मानता हूँ ।

विवेचन

तालाब का पानी यदि स्थिर है, तो उसमें व्यक्ति का प्रतिबिंब स्पष्ट दिख सकता है लेकिन जैसे ही कोई उस पानी में एक पत्थर फैंकता है, पानी में हलचल चालू हो जाती है । जहां पत्थर गिरा वहां से वर्तुल खडा होकर किनारे तक फैलता है । अंत में वह वर्तुल सारे पानी को अस्थिर कर देता है । उस अस्थिर पानी में स्पष्ट प्रतिबिंब दिख नहीं सकता है ।

मानव को मिला हुआ मन भी पानी जैसा है । यदि मन शांत है तो फटे-पुराने कपडे और झोपडी में भी व्यक्ति को राज्य सुख का अनुभव हो सकता है और यदि मन अशांत है तो छह खंड के साम्राज्य में भी व्यक्ति महादुःखी होता है । यदि मन शांत है तो फकीरी में भी भरपूर सुख है और यदि मन अशांत है तो अपार धन के बीच भी व्यक्ति महादुःखी होता है ।

मन शांत है तो भोजन करते करते भी केवलज्ञान प्राप्त हो सकता है और यदि मन अशांत है, तो बडी-बडी तपश्चर्या भी निरर्थक है ।

मन शांत है तो कलाहीन व्यक्ति भी परम सुखी है और यदि मन में अपार चिन्ता है, तो कलाकार भी मौत को गले लगाने के लिए तैयार हो जाता है ।

प्रस्तुत श्लोक में ग्रंथकारश्री हमें यही संदेश दे रहे है कि **''मन चंगा तो कथरोट में गंगा''** अतः मन को स्वस्थ और शांत रखने का प्रयत्न करो । यदि **मन शांत हो तो हमेशा सुकाल है, नहीं तो हमेशा धमाल है ।**

हमें प्राप्त हुई सबसे बडी शक्ति है, **मन** । भव चक्र में परिभ्रमण करती हुई आत्मा को मन की प्राप्ति अत्यंत ही दुर्लभ है । इस जगत् में अनंतानंत आत्माएँ है । इनमें एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय तक के जीव मन रहित है । पंचेन्द्रिय में भी जो सम्मुर्च्छिम है, वे असंज्ञी-पंचेन्द्रिय भी मन रहित है । मन मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को प्राप्त हुआ है ।

देव, मनुष्य, तिर्यंच और नारक जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय है, उनके पास में मन है । परंतु देव और नारक जीवों का वैक्रिय शरीर होने से उनका

मन अत्यंत ही कमजोर है । तिर्यंच जीवों की स्थिति ऐसी है कि वे प्रायः वर्तमान लक्षी जीवन जीते है ।

मान-अपमान का भी उनके मन पर ज्यादा असर नहीं होती है । घोडे के शरीर पर कोई गहने पहनाए या फूलों से सजाए तो भी उसे कोई अभिमान नहीं होता । मान-अपमान की बडी असर मनुष्य के मन पर ही होती है । मान-अपमान आदि अशुभ भावनाओं के कारण मन अस्थिर हो जाता है । अस्थिर मन में समाधि भाव प्राप्त नहीं होता है, और समाधि भाव के बिना सब कुछ व्यर्थ ही है।

सुभूम चक्रवर्ती

इस अवसर्पिणी काल में बारह चक्रवर्ती हुए । बारह में से 8 चक्रवर्ती मोक्ष में गए 2 चक्रवर्ती देवलोक में गए और 2 चक्रवर्ती सातवीं नरक में गए । चक्रवर्ती के लिए नियम है कि यदि वह छह खंड के सामाज्य का त्याग कर दीक्षा धर्म का स्वीकार न करे तो वह अवश्य नरक में जाता है । सुभूम और ब्रह्मदत्त चक्रवर्ती ने दीक्षा स्वीकार नहीं की इसलिए दोनो मरकर सातवीं नरक में गए ।

सुभूम चक्रवर्ती को प्राप्त हुआ छह खंड का साम्राज्य उसे अल्प लगता था । **``अन्य सभी चक्रवर्ती छह खंड के राजा होते है । मैं भी मात्र छह खंड का राजा रहूं तो क्या विशेषता ? चलो, अब मैं धातकी खंड को भी जीत लूं ।''** इस विचारधारा के कारण बडे-बडे राजमहल, 1,92,000 स्त्री परिवार का सुख, 36,000 मुकुटबद्ध राजा का सम्मान, राजशाही भोजन, 14 रत्न, 9 निधियाँ, पांच इन्द्रियों के मनोहर सुख की सभी विषय सामग्री भी दुःख का कारण बन गई । जब तक धातकी खंड को न जीते तब तक सुख की सारी समृद्धि में भी उसे क्षणभर भी सुख नहीं था ।

देवताओं से अधिष्ठित अपने चर्म रत्न पर 84 लाख रथ, 84 लाख हाथी और 84 लाख घोडों के साथ 96 क्रोड पैदल सैन्य को लेकर धातकी खंड के भरतक्षेत्र को जीतने के लिए चल पडा । बीच में दो लाख योजन का महाभयंकर लवण समुद्र था ।

साक्षात् विमान तुल्य उसका चर्मरत्न लवण समुद्र के उपर से गुजर रहा था । हजारों देवता उसे उठाकर लवण समुद्र पार कर रहे थें, इसी बीच उसका पुण्य पूरा हो गया । सभी देवताओं को एक साथ एक ही विचार आया कि **'जब इतने देवों ने चर्म रत्न को उठाया है तब यदि मैं छोड दूं तो क्या फर्क पडेगा ।'** अपने विचार को अमल करते हुए सभी ने चर्म रत्न को छोड दिया ।

लवण समुद्र के भयंकर प्रवाह में चर्मरत्न के साथ सभी गिर पडे । सारा चतुरंगी सैन्य लवण समुद्र के जलचर प्राणियों का कवल बन गए । सातवाँ खंड जीतने निकले सुभूम चक्रवर्ती को सातवां खंड तो नहीं मिला बल्की सातवीं नरक मिल गई । 33 सागरोपम तक प्रतिपल मरणांत वेदना के पीछे सबसे बडा कारण एक ही था **'मैं मात्र छह खंड का राजा रहूँ तो क्या विशेषता ?'** के विचार से पैदा हुई असंतुष्टि ।

मम्मण सेठ

मगध देश की राजधानी राजगृही नगरी में धनवान मम्मण सेठ भीतर से कंगाल था । **उसके घर पर कोई भींख मांगने जाय तो भीख मिले मान मिले गाली अवश्य मिलती थी ।** प्रातः काल की मंगल वेला में यदि भूल से भी कोई उसका नाम ले ले तो दिन भर भोजन भी नसीब नहीं हो । ऐसी बातों से वह हमेशा लोगों के लिए निंदापात्र बना था, उसके पीछे का मुख्य कारण था **''मेरे दो बैलों में से एक बैल को सिंग नहीं हैं''**-इस विचार से पैदा हुई असंतुष्टि ।

श्रेणिक महाराजा ने जब उसके मुख से यह बात जानी तब राजा ने कहा-**''मेरी गोशाला में से जितने बैल चाहिए उतने लेकर जा ।''**

तब मम्मण ने कहा **''मुझे ऐसे-वैसे बैल नहीं लेकिन, विशिष्ट बैल चाहिए ।''**

विशिष्ट बैल को देखने स्वयं श्रेणिक महाराजा उसके घर गये । बैलों को देखकर उनकी आँखे चौडी हो गई । असली सोने से बने दो बैलों पर

महामूल्य रत्न जडे हुए थे । मात्र एक बैल के दोनों सिंगडों पर रत्न जडने बाकी थे ।

श्रेणिक महाराजा ने कहा, `तुम्हारे इन दोनों सिंगों पर रत्न जडने की ताकत तो मेरी भी नहीं है । इतनी अपार संपत्ति मिलने पर भी वह फटे पूराने कपडे पहनता था । तेल और चवले का भोजन करता था ।

नदी में आयी हुई बाढ में कुदकर चंदन की लकडियों को खींचकर किनारे लाता था । अपनी जान की बाजी लगाकर धन कमाता था । किसके लिए ? मात्र अपने मन के मनोरथ को पूरा करने के लिए । क्या मिला उसे ?

अपूर्ण मनोरथ की पीडा, उससे घोर आर्तध्यान, प्राप्त हुई संपत्ति के रक्षण में भयंकर रौद्रध्यान और अंतिम फल 33 सागरोपम तक सातवीं नरक की सजा ।

महाबल राजा

महाविदेह क्षेत्र के सलिलावती विजय में वीतशोक नगर में धारिणी रानी और बलराजा का पुत्र महाबल क्रमशः राजा बना । बचपन से ही अचल, धरण, पुरण, वसु, वैश्रवण और अभिचन्द्र के साथ महाबल राजा की घनिष्ट मैत्री थी । अपने छह मित्रों के साथ महाबल राजा ने गुरुभगवंत का उपदेश सुना ।

संसार की भयंकरता और मोक्ष सुख की भद्रंकरता जानकर महाबल राजा का मन संसार से भयभीत हो गया । उसने संसार त्याग कर संयम लेने का निर्णय किया । उसने अपना निर्णय मित्रों को बताया तब मित्रों ने निर्णय किया कि **``हमने संसार के सांसारिक सुख एक साथ अनुभव किये है, तो अब धर्म भी एक साथ करेंगे । दीक्षा लेकर सभी ने छट्ठ-अट्ठम आदि सभी तप एक साथ करना शुरु किया ।''**

एक दिन महाबल मुनि के मन में अपने छह सहवर्ती मित्र मुनियों से ज्यादा तप करने की इच्छा हुई । तप के पारणा का दिन था । पारणे के लिए गोचरी लाने की तैयारी हो रही थी, तब माया करते हुए महाबल मुनि

ने कहा–**''आज मेरे सिर और पेट में दर्द है । इसलिए मुझे भूख नहीं है । आप लोग पारणा कर लो ।''** सभी मित्रमुनियों ने पारणा कर लिया । महाबल मुनि ने अधिक तप करने की भावना से माया का आश्रय किया ।

आगे चलकर बीस स्थानक की निर्मल आराधना के फलस्वरुप महाबल राजा ने तीर्थंकर नाम कर्म का बंध किया, परंतु छोटी सी माया के कारण उन्होंने स्त्री वेद का बंध किया । परिणाम स्वरुप इस अवसर्पिणी काल में उन्हे श्री मल्लिनाथ स्वामी के नाम से स्त्री तीर्थंकर के रुप में पैदा होना पडा । अनंत काल में होने वाले कुछ आश्चर्य में स्त्री तीर्थंकर भी एक आश्चर्य है । इस आश्चर्य के पीछे मूल कारण यही था– **''सबके समान तप करने में मेरी क्या विशेषता ?''** के विचार से पैदा हुई मानसिक असमाधि ।

नागश्री

अनंत काल पहले चंपापुरी नगरी में सोमदेव, सोमभूति और सोमदत्त नाम के तीन भाई रहते थे । उनको क्रमशः नागश्री, यज्ञश्री और भूतश्री नाम की पत्नियाँ थी । तीनों भाइयों के बीच में अपार प्रेम होने से उनकी पत्नियों के बीच सगी बहनों जैसा प्रेम था । **इसलिए सभी ने मिलकर निर्णय किया था कि हमें प्रतिदिन एक साथ क्रमशः एक-एक के घर में भोजन करना है ।**

एक दिन क्रमशः नागश्री के घर में भोजन का अवसर था । उसने भोजन के लिए अनेक स्वादिष्ट सामग्री तैयार की । भोजन का स्वाद चखते समय उसे पता चला कि उसने जिस तुंबडी की सब्जी बनाई है, वह कडवी है, इसलिए उस में जहर हो गया है । उसने निंदा के भय से उस सब्जी के बर्तन को एक ओर रख दिया । शेष रसोई से सभी को भोजन कराया । इसी बीच उसके घर में **आचार्य श्री धर्मघोषसूरिजी** के शिष्य मासक्षमण के तपस्वी धर्मरुचि अणगार गोचरी वहोरने पधारे ।

मुनि भगवंत को देखकर नागश्री ने विचार किया यदि अन्य वस्तु वहोराऊंगी तो व्यर्थ ही खर्च होगा । इससे अच्छा कि कडवी तुंबडी की

सब्जी इन्हें वहोराऊंगी तो खर्च भी नहीं होगा । एक पंथ दो काज हो जाएंगे । महात्मा ने पात्र रखा और उसने अपनी होशियारी मानते हुए सारी सब्जी महात्मा को वहोरा दी ।

गोचरी वहोरकर महात्मा गुरु भगवंत के पास आये । गुरु भगवंत मनः पर्यवज्ञानी थे । जब महात्मा ने गुरु भगवंत को गोचरी बताई, तब उसे जहर वाली जानकर गुरु भगवंत ने उसे निर्जीव भूमि में परठने की आज्ञा दी ।

महात्मा गुर्वादेश प्राप्त कर जंगल में गए । परठने की तैयारी करते समय जैसे ही एक बुंद नीचे गिरा, उसकी सुगंध से आयी सैकडों चींटियाँ मूर्च्छित हो गई । धर्मरुचि अणगार इस दृश्य को देखकर चकित हो गए । **एक बुंद गिरने से इतने जीवों की विराधना होती हो तो पूर्ण पात्र के द्वारा कितनी विराधना होगी ? क्या करूं ? यदि मैं इस पात्र को इस भूमि पर विसर्जन करुंगा तो इस प्रकार करोडों जीवों की हिंसा होगी ।**

इनकी हिंसा के पाप से मेरी कौन सी गति होगी ? इसके बजाय यदि मैं इसे अपने पेट में डाल दूं तो ज्यादा से ज्यादा मेरा ही मरण होगा । वैसे भी गुरुदेव की आज्ञा है कि **''इसे शुद्ध और निर्जीव भूमि में जाकर परठ लो ।''** मेरे शरीर के अलावा शुद्ध और निर्जीव भूमि दूसरी कौन-सी हो सकती है ? इस प्रकार विचार कर उन्होंने कडवी तुंबडी की सब्जी वापर ली । जहर का असर शरीर पर होने लगा, परंतु वे समाधि भाव में निश्चल थे । कालधर्म प्राप्त कर धर्मरुचि अणगार सर्वार्थसिद्ध विमान में देव बने ।

इस ओर गुरुभगवंत ने अपने ज्ञानबल से मुनि भगवंत की स्थिति जानकर लोगों के समक्ष नागश्री के दुष्कृत को प्रकट किया । **स्वजनों ने उसे घर से निकाल दिया ।** फिर भी उसे मन में पश्चात्ताप नहीं हुआ । जंगल में घुमते हुए एक दिन दावानल की आग में जलकर मरकर छठी नरक में चली गई । क्रमशः सातों नरकों में दो-दो बार जन्म लेकर अनंत काल भव भ्रमण करके द्रौपदी महासति के रुप में जन्म लेकर मोक्ष में गई ।

इन दृष्टांतों को जानकर मन की स्वस्थता और निर्मलता प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिये ।

योगिओं की अनोखी बातें

रुष्टैर्जनैः किं यदि चित्तशान्ति-
स्तुष्टैर्जनैः किं यदि चित्ततापः ।
प्रीणाति नो नैव दुनोति चान्यान्-
स्वस्थः सदोदासपरो हि योगी ।।26।। (इन्द्रवज्रा)

शब्दार्थ

रुष्टैर्जनैः=क्रोधित हुए लोगों से,
किं=क्या ?,
यदि=जो,
चित्तशान्तिः=दिल के भीतर स्वस्थता हो,
स्तुष्टैर्जनैः=खुश हुए लोगों से,
चित्ततापः=दिल के भीतर अशांति है,
प्रीणाति=अन्य को खुश करता है,
नो=नहीं,
नैव=अवश्य नहीं,
दुनोति=दुःखी करता है,
चान्यान्=और अन्यों को,
स्वस्थः=चिंता रहित,
सदा=हमेशा,
उदासपरो=समता भाव में लीन,
हि=वास्तव में,
योगी=महात्मा ।

गाथार्थ

यदि मन में शांति है तो दुनिया के लोग क्रोधित हुए तो भी क्या नुकसान है ? (अर्थात् कोई नुकसान नहीं है ।) और यदि मन में अशांति है तो दुनिया के लोग प्रसन्न हुए तो भी क्या लाभ है ? (अर्थात् कोई लाभ नहीं है ।) योगी पुरुष न तो दुनिया को खुश करते है, न ही नाराज करते है । वे हमेशा चिंता से रहित और समता भाव में लीन रहते है ।

विवेचन

बाजार में से जब हाथी गुजरता है, तब वह किसके लिए आकर्षण का केन्द्र नहीं बनता है ? सभी लोग अपनी व्यस्तता छोडकर हाथी को अवश्य देख लेते है । कोई उसे भोजन देता है, तो कोई पैसे । हाथी तो देख हर कोई खुश होता है, सिवाय कुत्ते । कुत्ते विशालकाय हाथी को देखकर भोंकने लगते है । फिर भी आज तक कभी ऐसा नहीं हुआ कि किसी स्वस्थ हाथी ने कुत्तों का प्रतिकार किया हो । कहावत भी है, **''हाथी चले बाजार कुत्ते भौंके हजार ।''** हाथी अपने में ही मस्त है, इसलिए कुत्तों के रोष की उसे कोई परवाह नहीं है ।

हाथी से विपरीत है, बंदर । बंदर जब बाजार में आते हैं...तब चारों ओर धमाल मचा देते हैं । भोजन देने वाले को भी वे डरा देते हैं । सभी को हैरान परेशान कर देते हैं, क्योंकि वे स्वयं अति चंचल है ।

दोनों उदाहरण ग्रंथकार की बात का समर्थन देते है कि यदि मन शांत है तो क्रोधित हुए लोगों से भी क्या ? और यदि मन अशांत है तो प्रसन्न हुए लोगों से भी क्या ? इसीलिए योगी पुरुष हमेशा मन को स्वस्थ और मस्त रखते है । वे किसी के हर्ष और शोक का कारण नहीं बनते हैं ।

योगिओं की योग साधना मात्र जंगलों में या एकान्त क्षेत्र में ही होती है, ऐसा नहीं है । लोगों के बीच में भी वे आत्मभाव में लीन रहते है । समता भाव की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए योगी पुरुषों की मनोदशा का अंदाज लगाना भी हम जैसे संतप्त मन वालों के लिए अशक्य है ।

एक ओर उनके शरीर पर कोई व्यक्ति शस्त्र से पीडा करे तो दूसरी ओर उनके शरीर पर कोई व्यक्ति शीतल चन्दन का विलेपन करे, तो भी योगी पुरुष उन दोनों व्यक्ति पर राग-द्वेष किये बिना समताभाव में लीन रहते हैं ।

चाहे जितने क्रोध के निमित्त उनके सामने हो, वे कभी क्रोध नहीं करतें । गाली या अपशब्द बोलने वाले, निंदा और टीका करने वाले तथा मनघडंत झूठे आरोप लगाने वालों के प्रति प्रतिकार तो करना दूर रहा,

मन में भी उनके प्रति द्वेष या दुर्भाव नहीं करते है । किसी भी परिस्थिति में वे अपनी समता नहीं खोते हैं ।

यदि कोई उन्हें अपशब्द बोले तो वे सोचते हैं, **'यह तो मुझे सिर्फ अपशब्द बोल रहा है, मुझे मार थोडे ही रहा है ।'**

यदि कोई उन्हें लकडी आदि से मारे तो वे सोचते है, यह तो सिर्फ मुझे लकडी से मार रहा है, मेरे प्राण थोडे ही ले रहा है ।

यदि कोई मरणांत उपसर्ग करे तो वे सोचते है, यह तो सिर्फ मेरे बाह्य प्राण ले रहा है, मेरी आत्मा को थोडे नुकसान पहुँचा रहा है ।

इस प्रकार उत्तरोत्तर भावधारा को बढाते हुए वे समता भाव में लीन रहते है । किसी भी उपाय से वे समता भाव को नष्ट होने नहीं देते है ।

जैसे चाहे कितनी भी बारीश आ रही हो, जो व्यक्ति Raincoat पहनकर बाहर निकलता है, उसे बारीश की असर नहीं होती है । वैसे ही चारों ओर के अशुभ निमित्तों के बीच भी जो धर्मात्मा शुभ भावनाओं से अपनी आत्मा को सुरक्षित रखता है वह हर परिस्थिति में स्वस्थ और मस्त रह सकता है ।

अनित्य आदि 12 भावना एवं मैत्री आदि 4 भावनाओं के माध्यम से जड़ के प्रति विरक्ति और जीवों के प्रति मैत्री को सदा बरकरार रखता है ।

इन शुभ भावनाओं के माध्यम से कई आत्माएँ केवलज्ञान प्राप्त कर चुकी है । कइओं ने संसार के बंधनों को छोडकर शुभ भावना करके कर्म क्षय किया तो कइओं ने संसार त्याग किये बिना शुभ भावनाओं के बल से कर्मक्षय किया ।

कइयों ने दीर्घ तपश्चर्याए करके केवलज्ञान पाया तो कइओं ने भोजन करते करते शुभ भावना और क्षमा भाव के माध्यम से केवलज्ञान प्राप्त किया ।

इन सभी योगी महापुरुषों के जीवन चरित्र ही उनकी मनोदशा को समझने का सुन्दर उपाय है । त्याग, तपश्चर्या के माध्यम से केवलज्ञान प्राप्त करनेवालो की मनोदशा तो फिर भी स्थिर हो सकती है । परंतु भोजन करते करते मनोदशा की स्थिरता के द्वारा सर्वकर्म का क्षय करने वाले कुरगडु मुनि पर दृष्टिपात करते है–

कुरगडु महामुनि

विशाला नगरी में **सुस्थित नाम** के आचार्य भगवंत अपने विशाल शिष्य परिवार के साथ में चातुर्मास हेतु रहे हुए थे। वहाँ एक साधु निरंतर मासक्षमण के पारणे मासक्षमण का कठोर तप करते थे। एक दिन वे तपस्वी मुनि पारणे के लिए एक बालमुनि के साथ नगर में भिक्षा ग्रहण हेतु परिभ्रमण कर रहे थे। वर्षा के कारण मार्ग में बहुत छोटे-छोटे मेंढक पैदा हुए थें।

ईर्यासमिति का पालन करते हुए भी तपश्चर्या से शरीर ग्लान होने से अचानक एक छोटा-सा मेंढक तपस्वी मुनि के पैरों के नीचे आकर मर गया। यह देखकर बालमुनि ने तपस्वी मुनि को सावधान करते हुए मेंढक की हिंसा की बात की। तपस्वी मुनि ने अपना बचाव किया।

बालमुनि ने सोचा, **'तपस्वी मुनि इस पाप की शुद्धि गुरु के पास जाकर अवश्य कर लेंगे।'** इसलिए वे मौन रहे। निर्दोष भिक्षा लेकर दोनों गुरु भगवंत के पास पहुँचे। तपस्वी मुनि ने अन्य सभी दोषों की आलोचना ली, परंतु मेंढक की हिंसा के पाप को प्रकट नहीं किया। बालमुनि ने सोचा **''जरुर भूल गए होंगे।''** परंतु अब कहना योग्य नहीं है, यदि कह दिया तो मुझपर गुस्सा करेंगे। शाम को प्रतिक्रमण के समय कहूंगा। तपस्वी मुनि पारणा करके स्वाध्याय आदि संयम क्रिया में प्रवृत्त हुए।

संध्या समय में सभी महात्मा गुरु भगवंत के समक्ष दिनभर के सभी पापों की आलोचना कर रहे थें। तपस्वी मुनि ने भी यथाक्रम अपनी आलोचना की परंतु गोचरी परिभ्रमण समय हुए मेंढक की हिंसा के पाप को प्रकट नहीं किया।

तब तपस्वी मुनि के आत्महित की चिन्ता करते हुए बालमुनि ने मेंढक की हिंसा के पाप को याद दिलाया। कहा–**''ओ तपस्वी ! आज नगर में भिक्षा हेतु परिभ्रमण करते समय आपके पैर के नीचे जो मेंढक मर गया था, उस पाप की ओलाचना करना आप भूल गए है।''**

बालमुनि की बात सुनते ही तपस्वी मुनि गुस्से में आ गए । अपना बचाव करते हुए कहने लगे–**''इर्यासमिति पूर्वक चलते हुए मेरे पैर के नीचे मेंढक की हिंसा कैसे हो सकती है'' तुम झूठ बोल रहे हो । आओ, मैं तुझे झूठ बोलने का फल दिखाता हूँ ।''** कहकर वे बालमुनि को सबक सिखाने के लिए दंडा लेकर मारने के लिए दौड पडे । बालमुनि तो बच गए परंतु अंधेरे में क्रोधान्ध हुए तपस्वी मुनि उपाश्रय के स्तम्भ से टकरा गए । क्रोध के अशुभ भाव में उनके प्राण चले गए ।

एक बार के क्रोध के आवेश में वे सभी संयम और तप को हारकर संयम की विराधना के फल स्वरुप दृष्टिविष सांप बने ।

जिस जगह पर तपस्वी मुनि दृष्टिविष सांप के रुप में पैदा हुए थे, वहाँ अन्य भी कई दृष्टिविष सांप थे, जिन्होंने पूर्व भव में संयम की विराधना की थी और यहाँ पैदा होने के बाद उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हुआ था । पूर्व जन्म की गलती का क्या परिणाम हुआ है, वे प्रत्यक्ष जानते थे । कहाँ साधुजीवन में सभी जीवों को दिया हुआ अभयदान और कहां दृष्टिविष सांप का जीवन ! जहाँ आँख से देखने पर अग्निवर्षा होती है । **नहीं ! 'अब फिर से गलती नहीं करनी है । अब गलती हो गई तो न जाने कितना पतन होगा !'** इस प्रकार वहां रहे सभी दृष्टिविष सांपों ने अहिंसक जीवन अपनाया था । दिनभर में वे बाहर नहीं निकलते, जिससे सूर्य के संपर्क से उनकी दृष्टि में अग्नि पैदा न हो । रात में बिल से बाहर निकलकर अपना जीवन निर्वाह करते थे । एक साधु की तरह वे अपना जीवन व्यतीत कर रहे थें ।

इस प्रकार की साधुवत् जीवन शैली को देखकर सांप बने तपस्वीमुनि के जीव ने **''ऐसी जीवन शैली मैंने पहले भी देखी है ।''** इस प्रकार विचार करते करते उन्हें जातिस्मरण ज्ञान हो गया ।

सत्यवादी बालमुनि के प्रति किये क्रोध के कारण अपनी क्या दशा हुई

है ? यह विचार करते हुए वे अपने आप को धिक्कारने लगे । क्रोध कषाय का प्रत्यक्ष फल क्या होता है ? वह समझ गए परंतु, अब कैसे बचा जाय ?

धर्म सामग्री की सफलता तो मनुष्य जन्म में ही है, तिर्यंच गति में मैं क्या सुकृत करुं ? विचार करते हुए उसने भी अन्य सांपों की तरह अहिंसक जीवन स्वीकार लिया । अरिहंतादि की शरण स्वीकार कर, सम्यक्त्व सहित किसी जीव के ऊपर क्रोध नहीं करने की प्रतिज्ञा ली । अब प्रतिदिन अहिंसक वृत्ति से वह अपना जीवन प्रसार करने लगा ।

जंगल के पास में **तुरमिणी नगरी** थी । वहाँ **कुम्भ राजा** न्याय-नीति पूर्वक राज्य पालन करता था । एक दिन राजपुत्र की सर्पदंश के कारण मौत हो गई ।

सर्पदंश से पुत्र की मृत्यु जानकर कुम्भ राजा समस्त सांप की जाति पर क्रोधित हो गया । उसने नगर में पटह बजवाया और घोषणा करवाई कि **'जो कोई भी जिन्दा या मृत सांप को पकडकर लाएगा उसे एक दिनार इनाम में दी जाएगी ।'** घोषणा सुनकर नगर के सभी निर्दयी लोग सांप पकडने लगे । पहले नगर में, फिर उद्यान में और आगे चलकर जंगल में सांपों को ढुंढ कर मारा जाने लगा । सभी अपने-अपने तरीके अजमाने लगे । यंत्र, तन्त्र और अंत में मंत्र के प्रयोग से लोग सांप को पकडने लगे ।

जंगल की ओर आगे बढते हुए गारुडिक उस स्थान पर पहुँचे जहाँ वह दृष्टिविष सर्प का समुह रहता था । रात्रि संचार के निशानों को देखकर गारुडिक बिलों के पास खडे रहकर मंत्र जाप करने लगे । इस मंत्र जाप के प्रभाव से दृष्टिविष सर्प भी खींचे जाने लगे । इसकी असर उस तपस्वी जीव पर भी पडी ।

अहिंसा व्रत में रहे उस सांप को विचार आया कि ``यदि मैं अपने मुख के भाग को बाहर निकालूंगा तो आँखों से निकली ज्वाला से सामने वाले

की हिंसा हो जाएगी । अतः मुख के भाग से नहीं, मैं पूंछ के भाग से शरीर को बाहर निकालता हूँ ।'' ऐसा विचार कर उसने पूंछ बाहर निकाली । गारुडिक के साथ आये शस्त्र धारकों ने तीक्ष्ण शस्त्र से उस पूंछ को कांट ली । जैसे-जैसे सांप अपने शरीर का भाग बाहर निकालता रहा, वैसे-वैसे वे उसे कांटने लगे ।

अपनी दृष्टि मात्र से सामने वाले को जलाकर भस्म करने की शक्ति होने पर भी तीक्ष्ण शस्त्र प्रहार को सहन करने की कैसी विशिष्ट मनोवृत्ति होगी ? वह कोई साधु महात्मा नहीं बल्कि दृष्टिविष सांप था । सामान्य से भी सांप को जो हैरान करता है, वह उससे बदला लिए बिना रहता नहीं है, फिर भी उसने जन्मजात स्वभाव को छोड दिया ।

भूतकाल से प्रेरणा लेकर भविष्यकाल को सुधारने के लिए वह सावधान बन गया । अरिहंतादि की शरण, सभी जीवों के प्रति क्षमापना कर और अनशन व्रत के स्वीकार के साथ उसने समतापूर्वक अपने प्राणों का त्याग किया ।

गारुडिक एवं उसके साथियों ने उस सांप के टुकडें-टुकडें कर राजा को प्रदान किया । राजा ने उन्हें इनाम दिया । इस ओर नाग देवता ने राजा को स्वप्न में संकेत दिया–**''आज से तुम सांप की हत्या का पाप बंद करोगे तो तुम्हें पुत्र की प्राप्ति होगी ।''**

पुत्र प्राप्ति के उपाय को जानकर उसने सांप की हत्या पर प्रतिबंध लगाया । सांप का जीव समता पूर्वक शुभ ध्यान के साथ मरकर उसी कुम्भ राजा की पटरानी की कुक्षी में उत्पन्न हुआ । कालक्रम से उसका जन्म हुआ । राजा ने बडे हर्षोल्लास से उसका जन्म महोत्सव किया ।

नागदेवता से प्राप्त होने के कारण राजा ने उसे **''नागदत्त''** नाम दिया । पांच धाव माताओं के लालन-पालन के साथ नागदत्त बडा होने लगा । राजा ने कलाचार्य के पास उसे कलाभ्यास कराया । एक दिन वह

अपने महल के झरोखें में बैठा था । राजमार्ग पर नजर करते हुए उसने कुछ मुनि भगवंतों को ईर्यासमिति के पालन पूर्वक जाते हुए देखा । मुनि भगवंतों के दर्शन करके वह सोचने लगा-``ऐसी जीवन चर्या मैंने पहले कही देखी है ।'' विचार करते-करते उसे जातिस्मरण ज्ञान हो गया । पूर्व के दृष्टिविष सर्प और उसके पहले तपस्वी साधु के भव को उसने साक्षात् देखा ।

राग-द्वेष से भरा संसार ही समस्त दुःखों का कारण है, इस बात को जानकर उसका मन संसार के प्रति विरक्त हो गया । माता-पिता से अनुज्ञा प्राप्त कर नागदत्त मुनि ने सद्गुरु के पास दीक्षा स्वीकार की ।

दीक्षा स्वीकार करते समय उन्होंने गुरु भगवंत को विनती की ``पूर्वभव के कर्म और तिर्यंच गति के संस्कारों के कारण मुझसे भूख की पीडा सहन नहीं होती, इसलिए मैं छोटा भी तप नहीं कर सकूंगा । अतः मैं अपने जीवन में क्रोध त्याग करने की प्रतिज्ञा करता हूँ ।''

गुरु ने आश्वासन देते हुए कहा, **``तप के बिना भी मात्र क्षमा से भी तुम केवलज्ञान प्राप्त कर सकते हो ।''** गुरुवचन को तहत्ति कर प्रतिपल क्षमा भाव रखते हुए वे निरतिचार चारित्र का पालन करने लगे परंतु क्षुधा वेदनीय कर्म के उदय के कारण सूर्योदय से ही उन्हें भूख लग जाती थी । नवकारशी का पच्चक्खाण करना भी अति कठिन था । नवकारशी आने के साथ ही वे एक घडे जितने चावल वापर लेते थे, इसलिए लोगों में वे **कुरगडु** के नाम से प्रसिद्ध हो गए । फिर भी निंदा और प्रशंसा में वे समभाव रखते थे ।

उनके गच्छ में अन्य चार तपस्वी साधु कठोर तप करते थें । एक साधु एक महिने के उपवासी थे, दूसरे दो, तीसरे तीन और चौथे चार महिने के उपवासी थें । चारों तपस्वी साधु, नित्य नवकारशी करने वाले कुरगडु मुनि की ईर्ष्या करते थे । जबकि कुरगडु मुनि उन तपस्वी मुनियों की अनुमोदना और अपनी आत्मनिंदा करते थे ।

बाह्य दृष्टि वे तपस्वी नहीं थे परंतु अंतरंग दृष्टि से वे बहुत बडे साधक थे । तपधर्म के सार रुप क्षमाधर्म को उन्होंने आत्मसात् कर लिया था । उनकी साधना से आकर्षित हुई शासन देवी अलंकारों से सुशोभित होकर एक दिन संध्या समय में उन्हें वंदन करने आयी ।

चारों तपस्वी मुनियों को छोडकर कुरगडु मुनि को वंदन करके बोली- **''हे कुरगडु मुनि ! आपकी जय हो, विजय हो ।''** इस प्रकार बार-बार उनकी स्तुति करके जैसे ही वह वापस लौट रही थी, वैसे ही चारों तपस्वीमुनि क्रोधित होकर बोले, हे देवी ! हमने सुना है कि देवता विवेकी होते है, परंतु तुमने तपस्वियों की अवगणना करके नित्य त्रिकाल भोजन करने वाले साधु को वंदन क्यों किया ?

देवी बोली, **'हे साधुओं ! तुम व्यर्थ में कोप मत करो, मैंने भावसाधु को वन्दन किया है । तुम तो मात्र द्रव्य तपस्वी हो जबकि ये तो भाव साधु है । इनकी भावसाधुता और आत्मनिर्मलता का बोध तुम्हें कल सुबह हो जाएगा ।'** यह कहकर देवी चली गई, परंतु चारों तपस्वी साधु और ज्यादा कूपित हुए ।

कुरगडुमुनि दूसरे दिन सुबह नित्यक्रमानुसार प्रतिक्रमणादि करके निर्दोष गोचरी लायी । तपस्वी साधुओं को बताकर लाभ देने की विनती की । तब क्रोध में अंध बने उन तपस्वी साधुओं ने उनके आहार के पात्र में ही थूंक लिया । साधुओं के कोप के अयोग्य व्यवहार से वे लेश भी कूपित नहीं हुए । वे अपनी ही भूल देखने लगे ।

वे सोचने लगे, **''धिक्कार हो मुझे, मैं कितना प्रमादी हुँ ।** एक ओर इनकी तरह श्रेष्ठ तप नहीं कर सकता तो दूसरी ओर इनकी वैयावच्च करने में भी मैं प्रमादी हूँ । कफ की कुंडी के अभाव में इनका कफ मेरे पात्र में गिरा, **मेरे लुखे चावल अब चुपड गए ।** तप करने में असमर्थ यदि मैं इनकी वैयावच्च भी नहीं कर सकूंगा तो मेरी आत्मा की कौन-सी गति होगी ।''

इस प्रकार बार-बार अपनी आत्मनिंदा करते करते अपार समता भाव से गोचरी वापरते हुए वे धर्मध्यान से शुक्लध्यान की भावधारा में चढ गए । ध्यान रुपी अग्नि में उनके समस्त घाति कर्मों का क्षय हो गया । **उन्हें केवलज्ञान हो गया ।**

अन्य साधु कठोर तपश्चर्या से भी जो प्राप्त न कर सके वह केवलज्ञान समताभाव के बल से प्राप्त कर दिया । देवताओं ने आकर उनके केवलज्ञान का भव्य महोत्सव किया । सुवर्ण कमल पर बिठाकर उनकी जयजयकार करते हुए स्तुति की ।

अब उन चारों तपस्वी साधुओं का क्रोध शान्त हुआ । उन्हें अपनी भूल समझ में आयी । वे परस्पर बाते करने लगे, **''वास्तव में शासन देवी ने जो कहा था, वह सही था । सच मायने में वे भाव तपस्वी है । हम तो द्रव्य तपस्वी है । हमने क्रोध में अंध बनकर इनकी घोर आशातना की है, अतः हमारी क्या गति होगी ?''**

पश्चात्ताप के भाव में वे उन्होंने कुरगडु के चरणों का आश्रय लिया । अपने अपराधों को प्रकट कर बार-बार निंदा करने लगे । इस तरह मन-वचन-काया के अपराधों की क्षमा मांगते हुए उन चारों तपस्वियों को भी केवलज्ञान हो गया । पांचों केवली मुनि पृथ्वीतल पर विचरण करते हुए भव्य जीवों को बोध देकर आयुष्य क्षय होने पर मोक्ष में चले गए ।

''किसी भी कीमत पर समताभाव खोने जैसा नहीं है'' ऐसी मनोदशा साधको की होती है और हमारी...? उनकी और अपनी मनोदशा में कितना बडा अंतर है, यह विचार कर हमें भी अपने मन को समता भाव में लीन बनाने का प्रयत्न करना चाहिए ।

आत्मा अकेली है !

एकः पापात् पतति नरके, याति पुण्यात् स्वरेकः,
पुण्यापुण्यप्रचयविगमाद्, मोक्षमेकः प्रयाति ।
सङ्गान्नूनं न भवति सुखं, न द्वितीयेन कार्यं,
तस्मादेको विचरति सदाऽऽनन्द सौख्येन पूर्णः ।।27।।

(मन्द्राक्रान्ता)

शब्दार्थ

एकः=अकेली आत्मा,
पापात्=पाप के कारण,
पतति=गिरती है,
नरके=नरक में,
याति=जाती है,
पुण्यात्=पुण्य के कारण,
स्वः=स्वर्ग में,
एकः=अकेली आत्मा,
पुण्यापुण्यप्रचयविगमाद्=संग्रहित पुण्य-पाप से मुक्त होने पर,
मोक्षमेकः=अकेली आत्मा मोक्ष में,
प्रयाति=चली जाती है,
सङ्गात्=संबन्ध से,
नूनं=निश्चय से,
न भवति=नहीं होती है,
सुखं=आनंद,
न द्वितीयेन=किसी अन्य से नहीं,
कार्यं=काम है,
तस्मात्=इसलिए,
एको=अकेली आत्मा,
विचरति=रहती है,
सदा=हमेशा,
आनन्द सौख्येन=आनंद सुख से,
पूर्णः=भरपुर ।

गाथार्थ

अकेली आत्मा पाप के कारण नरक में गिरती है, अकेली आत्मा पुण्य के कारण स्वर्ग में जाती है । संग्रहित पुण्य-पाप से मुक्त होने पर अकेली आत्मा ही मोक्ष में जाती है । वास्तव में संबंध से सुख नहीं होता है, इसलिए किसी अन्य से कोई काम नहीं है । अकेली आत्मा ही आनंद और सुख से भरपुर रहती है ।

विवेचन

संसार और मोक्ष साँप-सीढी के खेल जैसा है । सांप-सीढी के खेल में सांप के काटने पर व्यक्ति नीचे उतरता है और सीढी मिलने पर ऊपर चढता है । अंत में एक से सौं तक अंकों की सफर पूरी होती है तब खेल पूरा होता है । संसार में भी कुछ ऐसा ही है । संसार के खेल में पाप के कारण आत्मा नरकादि दुर्गति में गिरती है और पुण्य के कारण स्वर्गादि सद्‌गति को प्राप्त करती है ।

जब पुण्य और पाप कर्म का पूर्णतया क्षय हो जाता है तब, आत्मा अकेली सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त होकर मोक्ष में चली जाती है । सांप-सीढी के खेल में खिलाडी को जीत पाने के लिए अकेले ही महेनत करनी पडती है, वैसे ही आत्मकल्याण के मार्ग में भी प्रगति पाने के लिए जीवात्मा को स्वयं ही महेनत करनी पडती है ।

किसी अन्य के द्वारा की गई आत्म साधना से किसी अन्य का मोक्ष प्राप्त हो जाय, ऐसा न कभी हुआ है, न कभी होगा । ग्रंथकारश्री इसी बात को स्पष्ट बताकर कह रहे है कि तुम यदि आत्म साधना में अन्य के संग की अपेक्षा रखते हो तो वह निरर्थक है ।

आत्मिक सुखों को पाने के लिए सभी प्रकार के बाह्य संयोगों का त्याग करना जरुरी है । सम्बन्धों के त्याग से ही आत्मा अपने अनंत आनंद में लीन होगी । **नश्वर को छोडे बिना शाश्वत सुखों की प्राप्ति होना असंभव है ।**

रेशम का कीडा अपनी सुरक्षा के लिए अपने शरीर को अपने मुख से लार निकाल कर चारों ओर से लपेटता है परंतु, सुरक्षा की आशा में किया गया यही प्रयास उसकी मौत का कारण बनता है ।

रेशम के अखंड धागे को पाने के लिए उस कीडे को गर्मागर्म पानी में डाल कर मार दिया जाता है । उसकी इस दशा को देखकर हमें उस पर

दया आती है, परंतु इस अनादि-अनंत संसार में सभी संसारी जीवों की यही दशा है । रेशम के कीडे की तरह भवोभव करुण मौत को पाती हुई हमारी आत्मा की दया हमें नहीं आती, यह बडा आश्चर्य है ।

चार गति रुप इस संसार में हमारी आत्मा ने जहाँ भी जन्म लिया, वहाँ हमने आत्मा से भिन्न ऐसे शरीर, घर, सगे-सम्बन्धियों के साथ संयोग सम्बन्ध का विशाल वर्तुल खडा किया । मात्र इस मनुष्य जन्म की ही बात करे तो माता के गर्भ में आहार के पुद्गलों को ग्रहण कर शरीर इन्द्रियाँ आदि बनाए ।

जन्म के बाद सबसे पहला सम्बन्ध माता से जोडा । आगे चलकर पिता, भाई, बहन, चाचा-चाची, मामा-मामी, दादा-दादी, नाना-नानी आदि का परिचय हुआ । माता के सभी सम्बन्धी को अपने सम्बन्धी बना दिये । फिर अडोस-पडोस के बच्चे, खेल-कुद के दोस्त, स्कुल के दोस्त, कॉलेज के दोस्त, व्यवसाय के दोस्त आदि से सम्बन्ध जुडता गया । अरे ! शादी होने के बाद तो पत्नी के सारे सगे-सम्बन्धी अपने हो गए । सास, श्वसुर, साला, साली, साढूभाई आदि सारे सम्बन्ध बढने से दुगने हो गए ।

व्यक्ति इन सम्बन्धों में अपने आप को सुरक्षित मानता है । नए-नए सम्बन्धों को जोडकर खुश होता है, परंतु वह नहीं जानता कि यह सारे सम्बन्धों का जाल रेशम के कीडे के द्वारा बनाए रेशम के धागे समान है ।

इन सारे सम्बन्धों की ममता के कारण जीवात्मा को जन्म जन्मों तक करुण मौत मरना पडता है । रिश्तों को संजोए रखने के लिए व्यक्ति दिन-रात अथक प्रयास करता है ।

प्रायः संसार के सभी रिश्ते पैसों के आधार पर टिकते है । अतः पैसों की कमाई के लिए व्यक्ति को काली मजदूरी करनी पडती है ।

दुकान का नौकर तो आठ घंटों की नौकरी करके अपना पगार लेकर

छूट जाता है, परंतु दुकान के मालिक को दिन-रात चिंता करनी पडती है, जिसके लिए उसे कोई पगार भी नहीं मिलता ।

सम्बन्धों के सुख को पाने व्यक्ति व्यापार में अन्याय और अनीति करता है । उसके द्वारा कमाए हुए धन में सभी भागीदार हो जाते है परंतु उसकी सजा तो उसे अकेले ही सहनी पडती है । धन में सभी भागीदार बनने वाले पाप में कोई भागीदार नहीं बनते है ! हाय कैसा संसार !

घी का व्यापारी

एक सेठ को घी का बडा व्यापार था । एक दिन दुकान पर बैंठे उसने ग्राहक को ठगते हुए दुगुनी कीमत में घी बेचा । आज एक किलों घी का फायदा हुआ है, इसलिए परिवार के साथ घेबर खाने की इच्छा से उसने अपने नौकर के साथ एक किलो घी घर भेजकर घेबर बनाने का संदेश दिया ।

रोज तो रोटी और सब्जी खाते है, आज परिवार के साथ घेबर खाने को मिलेंगे इस आशा से दुकान का कार्य निपटाकर शाम को जल्दी-जल्दी घर पहुँचा । भोजन की तैयारी हुई परंतु आज भी थाली में रोटी-सब्जी !

पत्नी पर गुस्सा करते हुए पूछा, **'क्या रामु घी लेकर नहीं आया था ?'**

पत्नी, **'आया था ।'**

सेठ, **'तो घेबर नहीं बनाए ?'**

पत्नी, **'बनाए थे ।'**

सेठ, **'तो कहाँ है घेबर ?'**

पत्नी, `घेबर तैयार कर आपका इन्तजार ही कर रही थी, तब अपने मित्रों के साथ जमाई-सा आ गए । अतः घेबर उन्हें परोस दिये । उन्हें वापस जल्दी लौटना था, इसलिए आपको समाचार नहीं भेजे ।

सेठजी की घेबर खाने की इच्छा धूमिल हो गई ।

दुकान पर बैठकर जिस ग्राहक को सेठ ने ठगा था, उसने जाकर राजा को शिकायत की । राजा ने सेठ के घर सैनिक भेजे और सेठ को जेल में डालकर सौ हंटरों की कडी सजा की ।

बिचारा सेठ, घेबर तो न खा सका लेकिन अन्याय-अनीति की सजा उसे अकेले ही सहनी पडी ।

संत वाल्मिकी

एक समय का खुंखार लुटेरा वालिया जंगलों के रास्ते जानेवाले सभी को लूटता था । एक दिन एक संत उस रास्ते से जा रहे थे । चाकू दिखाते हुए धमकी दी-**''बाबाजी ! तुम्हारे पास जो कुछ है वह रख दो ।''**

संत तो फकीर थे, उन्होंने कहा, **''मैं अपने पास जो कुछ है वह तुम्हें देने के लिए तैयार हूँ, परंतु यह लूंट तुम किसके लिए करते हो ?''**

वालिये लुटेरे ने कहा, **''अपने परिवार के पालन-पोषण के लिए ।''**

संत ने फिर से प्रश्न किया-**''लुंट के पैसों में पूरा परिवार भागीदार है, परंतु क्या इस लुंट के पाप में तुम्हारा परिवार भागीदार है ?''**

वालिये लुटेरे ने कहा, **''बेशक ! इस पाप में वे भी भागीदार ही हैं ना !''**

संत ने कहा, **''मैं यही खडा हुँ । तुम घर जाकर अपने परिवार को पूछकर आओ ।''**

वालिया लुटेरा घर गया । परिवार के सभी सदस्यों को इकट्ठा करके संत के द्वारा पूछे गए सवाल की बात की और पूछा-**''क्या तुम सभी मेरे पाप में भागीदारी लेने के लिए तैयार हो ?''** सभी ने इन्कार कर दिया ।

वालिया लुटेरा परिवार के प्रत्युत्तर को लेकर संत के पास पहुँचा । संत से सारी बात की । **संत ने उसे संसार की असारता और सम्बन्धों में रही स्वार्थ वृत्ति का उपदेश दिया ।** संत के उपदेश को पाकर उसने संसार का त्याग किया । वालिया लुटेरा मिटकर वाल्मिकी संत बन गए ।

ये दोनों उदाहरण हमें यही संदेश देते है कि सांसारिक सम्बन्धिओं के प्रति ममत्व को दूर कर सर्व जीवों के प्रति समता भाव प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए । **इस भव के सम्बन्धियों को हम अपने मानते है, परन्तु वास्तव में जगत् के सभी जीव अपने किसी न किसी भव के सम्बन्धी जरुर बने है ।** अतः मात्र इस भव के नहीं बल्कि भवोभव के सम्बन्धों को निभाने सांसारिक बंधनों को त्याग कर गुरुकुलवास में रहकर आत्म कल्याण के मार्ग में आगे बढना चाहिए ।

आत्म कल्याण के मार्ग में किसी की राह देखना व्यर्थ है । कोई साथ दे या न दे, यदि हृदय में आत्मकल्याण की इच्छा हो तो अकेले भी परमात्मा के बताए मार्ग पर चलने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिए ।

शंका-स्वजनों के स्नेह में इतना दुःख है तो क्या संसार में रहकर अकेले जीवन (Solo-Living) नहीं जीया जा सकता है ?

समाधान-नहीं, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है । उसके जीवन और संस्कारों की सुरक्षा लोगों के बीच में ही है । वर्तमान में इस तरह के अकेलेपन (Solo-Living) का जीवन प्रचलित हुआ है । परंतु यह कोई त्याग नहीं बल्कि मात्र स्वार्थ केन्द्रित है ।

जीवों को जड के प्रति अत्यंत आसक्ति है, जबकि जीवों के प्रति द्वेष है । **जड के राग के कारण व्यक्ति संसार के सुखों को छोडने में समर्थ नहीं है और स्वार्थ वृत्ति के कारण अपने सुखों को बांटने की भावना भी नहीं है ।** इसलिए कई जगह इस तरह सांसारिक सुख के कारण अकेलापन देखा जा रहा है । सुखी होने की चाह में व्यक्ति

अनैतिक मार्ग की ओर खींचा जा रहा है । सबसे पहले व्यक्ति अधिक से अधिक पैसा कमाकर अमीर होना चाहता है, ताकि वह जीवन भर ऐश कर सके ।

विदेशों में व्यक्ति बडी-बडी कंपनियों में नोकरी करता है । उसे अपने जीवन में किसी की दखलंदाजी पसंद नहीं है । वह जिम्मेदारियों से दूर भागता है । **दुनिया में हर वस्तु किराए से मिलती है । करोडों की स्थायी संपत्ति बनाने की जगह व्यक्ति घर, दुकान, गाडी बंगले सभी किराए से लेता है ।** यहाँ तक कि पहनने के महंगे कपडे और कीमती आभूषण भी किराए से लेता है । वह यहीं सोचता है कि करोडो की स्थायी संपत्ति खरीदने की जगह अपने पैसों को बैंको में, शेयर बाजारों में अथवा सोने-चांदी में निवेश कर रखों । उसके द्वारा आने वाले मुनाफे से घर खर्च चलाओ और अपनी बेन्क बेलेन्स को मजबूत बनाओ ।

स्वार्थ की वृत्ति इतनी बढ रही है कि आज व्यक्ति शादी के बंधनों से दूर भागने लगा है । शादी करके पछताने से अच्छा है कि शादी ही नहीं करनी । शादी होने के बाद सम्बन्ध लम्बे टिकते नहीं है, इसलिए व्यक्ति अत्यधिक मानसिक तनाव में जीता है ।

इसके बजाय पैसों के बल पर राजा की तरह जीवन जीना पसंद करता है । विदेशों में कई जगह यही चलन चल रहा है । लीव इन रिलेशनशीप के माध्यम से पत्नी भी भाडे पर ले लेता है । हर वर्ष घर बदलने के साथ पत्नियाँ भी बदली जाती है । **बच्चों का पालन पोषण बोझ लगता है इसलिए बच्चों को पालने की जगह, बडे-बडे पैसे वाले जानवरों को पालना पसंद करते है ।**

पैसे कमाने का भूत इतना बढ गया है कि कदाचित् व्यक्ति शादी करता भी है तो DINK अर्थात् Double Income No Kids का फॉर्मूला बना रखा है । पति-पत्नी दोनों नौकरी करते है । पैसो की आय बढी है और बच्चों की जिम्मेदारी नहीं है, सास-श्वसुर का बंधन नहीं है इसलिए पैसों

का संग्रह मात्र मौज-शोक के पापों में उडाया जाता है । पर्यटन स्थल के सभी रिसोर्ट और होटलें सुरा और सुन्दरी के पापों के अड्डे बने रहते हैं ।

स्वार्थ के सुख का भूत आज इस तरह सवार हुआ है कि आज वैश्विक स्तर पर जनसंख्या घटाने के नाम पर सामुहिक हत्या के षड्यन्त्र चल रहे है ।

जैसे खेत में फसल पैदा होने तक किसान उसमें पानी का सिंचन एवं सुरक्षा का प्रबंध करता है, परंतु जैसे ही अनाज पक जाता है, स्वयं किसान अपनी फसल को काट देता है ।

इसी विचार से आगे बढता हुआ पहले जानवरों के प्रति और अब इन्सानों के प्रति भी व्यक्ति निर्दयी बना है । Resources Crises के नाम पर ऐसा पढाया जा रहा है कि यदि जनसंख्या युंही बढती रही तो कुछ वर्षों के बाद Petrol, Diesel आदि कई सारे जीवनोपयोगी खनिज पदार्थ मात्र Museum में ही देखने मिलेंगे । ऐसे में यदि इन खनिज पदार्थों की रक्षा करनी है तो जनसंख्या घटानी होगी ।

इसलिए जब तक व्यक्ति सशक्त है, तब तक उसका पोषण होना चाहिए, बाद में नहीं । इसी विचार से प्रेरित होकर कृत्रिम महामारी के प्रयोग भी किये जा रहे है ।

एक छोटे-से जीव हिंसा का विचार भी भयंकर होता है, तो सारी दुनिया के लोगों की हिंसा का विचार तो कितना भयंकर है, इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती है । इन सभी विचारों का मूल कारण स्वार्थ भावना है । बस, मुझे सुखी होना है, बाकी दुसरों का जो कुछ भी हो ।

अतः अकेलेपन में जीवन जीने के विचारों को छोड आत्मा को एकत्व भावना के साथ भावित करना है । **अकेलेपन के विचारों में जीवों के प्रति द्वेषभाव और अपने अकेले के सुख की चिन्ता में स्वार्थ भाव है ।** जबकि एकत्व भावना में सभी जीवों के प्रति स्नेह और मैत्री का भाव होने से परोपकार भाव है ।

मनोजय बिना साधना व्यर्थ है

त्रैलोक्यमेतद् बहुभिर्जितं यै-
र्मनोजये-तेऽपि यतो न शक्ताः ।
मनोजयस्याऽत्र पूरो हि तस्मात्,
तृणं त्रिलोकीविजयं वदन्ति ।।28।। (उपजाति)

शब्दार्थ

त्रैलोक्यं=तीन भुवन का साम्राज्य,
एतद्=यह,
बहुभिः=बहुतों के द्वारा,
जितं=जीता गया है,
यैः=जिनके द्वारा,
मनोजये=मन पर विजय,
ते=वे,
अपि=भी,
यतो=यदि,
न शक्ताः=समर्थ नहीं है,
मनोजयस्य=मन पर विजय का,
अत्र=यहाँ,
पूरो=सामने,
हि=वास्तव में,
तस्मात्=इस कारण से,
तृणं=घास
त्रिलोकीविजयं=तीन लोक के विजय को,
वदन्ति=कहते है ।

गाथार्थ

कइयों ने तीन भुवन के साम्राज्य को जीता है, परंतु वे भी यदि मन को नहीं जीत पाये है तो मनोजय के आगे तीन भुवन का साम्राज्य भी घास के तिनके के समान है, ऐसा ज्ञानी पुरुष कहते है ।

विवेचन

युद्ध के मैदान में हथियारों के बल पर किसी राज्य पर विजय पाना आसान है, परंतु अपने मन पर विजय पाना अति-मुश्किल है । **बडे-बडे साधकों को भी मनोजय के विषय में हार खानी पडती है ।** मन अत्यंत सूक्ष्म होने से उसे पकडना अतिकठिन है ।

जब तक मनोजय की साधना नहीं होती है तब तक की हुई सारी साधना आत्मा के लिए मोक्ष प्रदायी नहीं बनती है । मनोजय की साधना का महत्त्व बताते हुए ग्रंथकारश्री इस श्लोक में संदेश दे रहे है कि–तीन भुवन के साम्राज्य को जीतने वाला कोई शुरवीर यदि मन को नहीं जीतता है तो उसकी तीन भुवन की सारी समृद्धि घास के तिनके समान है । **अतः मनोजय के लिए विशेषाधिक प्रयत्नशील बनने की आवश्यकता है ।**

मन के दो दोष सबसे भयंकर है–

(1) चंचलता (2) मलिनता

थोडी हवा चलने पर पेड के पत्ते हिलने लगते है, थोडी ज्यादा हवा चलने पर पेड की डाल हिलने लगती है, आंधी तुफान आने पर पूरा पेड उखड जाता है, परंतु पर्वत तो चाहे जितने आंधी-तुफान आ जाए ,वह कभी हिलता नहीं है ।

हमारा मन पेड के पत्तों जैसा है, जो थोडे से अनुकूल या प्रतिकूल निमित्त को पाकर विचलित हो जाता है । चंचल स्वभाव वाले हमारे मन के कारण हमारे लिए तो अनुकूल निमित्त भी पापकारी है और प्रतिकूल निमित्त भी पापकारी है ।

अनुकूल निमित्तों को पाकर हमारे मन में राग, अभिमान, गर्व आदि भाव पैदा होते है और प्रतिकूल निमित्त पाकर हमारे मन में द्वेष, घृणा, नफरत और अन्य के प्रति क्रोध के भाव पैदा होते है ।

चंचल मन के कारण भौतिक सुखों की सामग्री प्राप्त होने पर भी हमें अपनी सामग्री अल्प लगती है ।

हमारी नजर हमसे कम सामग्री पाने वालों पर जाने के बजाय हमसे ज्यादा सामग्री पाने वालों पर ही जाती है ।

अन्य की अधिक सामग्री देखने के बाद हमें अपने पुण्य से प्राप्त हुई सामग्री अल्प ही लगती है । **एक बार ऐसा भाव मन में पैदा हो गया तो समझो कि हमारा सारा सुख चैन हराम हो गया ।**

तुलना की इस वृत्ति के कारण अन्य की सामग्री को हडपने की मलिन वृत्तियाँ मन में पैदा हुए बिना नहीं रहती है । मन की यह मलिनता न जाने हमारे जीवन में कितने सारे पापों का प्रवेश कराकर भवोभव की परंपरा का सर्जन करती है । अतः इन दोनों दोषों पर विजय प्राप्त करने के लिए जो शक्य प्रयत्न हो, उसे आजमा कर मन को स्वस्थ करना जरुरी है ।

शरीर के आरोग्य को पाने के लिए आयुर्वेद के नियमानुसार सबसे पहले पेट में रहे मल की शुद्धि खूब आवश्यक है । जब तक मल की शुद्धि नहीं होती है, तब तक चाहे जितनी औषधियाँ या रसायन का सेवन किया जाय, वह देह के लिए पुष्टिकारक नहीं होता है ।

उसी प्रकार मन की शुद्धि के बिना सिर्फ काया और वचन के द्वारा की गई सभी शुभ प्रवृत्तियाँ आत्मा के लिए लाभदायी सिद्ध नहीं होती है । अतः पूर्वाचार्यों ने सबसे पहले मन की शुद्धि पर भार दिया है ।

सत्य की खोज में 21 बार बौद्ध और जैन मत में आना-जाना करके जैन धर्म की कीर्ति को फैलाने वाले **सिद्धर्षि गणी** भगवंत ने **उपमिति भव प्रपंच** । नाम के वैराग्य पोषक ग्रंथ में मन को सूअर की उपमा दी है । प्रभु से प्रार्थना करते हुए वे कहते है–

अनाद्यभ्यासयोगेन, विषयाशुचि कर्दमे ।
गर्ते शूकरसंकाशं, याति मे चटुलं मनः ।।

अर्थात्–अनादिकाल के कुसंस्कार के कारण हे प्रभो ! सूअर जैसा मेरा चंचल मन विषय रुपी कीचड की गट्टर में चला जाता है ।

सुअर का स्वभाव बडा विचित्र है । वह मिष्टान्न जैसी अच्छी वस्तुओं को पसंद करने के बजाय गंदगी को ही पसंद करता है । स्वच्छ स्थान को छोडकर वह कीचड भरी गट्टर में आलोटता है । उसके ऐसे स्वभाव के कारण वह किसी को पसंद नहीं है । डंडे की मार खानी पडे तो भी वह गंदगी छोडता नहीं है ।

हमारा मन भी सूअर जैसा अत्यंत विचित्र है । अनादि काल से वह पांच इन्द्रियों के विषय भोग में, जहाँ जो मिला उसमें आसक्त होता है । ये पाँच इन्द्रियों के विषय अशुचि की गट्टर के समान है ।

स्त्री शरीर गंदगी से भरी थैली जैसा है फिर भी अनादि कुसंस्कारों के कारण मन रुपी सूअर उसी स्त्री शरीर की ओर आसक्त रहता है । बाहर से गोरी चमडी के आवरण होने पर भी भीतर तो मल-मूत्र, रुधिर, मांस, चर्बी, मेद-मज्जा आदि अशुचि से ही भरी हुई है ।

इसके सामने आत्मा और परमात्मा परम पवित्र है । फिर भी मन रुपी सूअर गंदगी से भरी गट्टर के समान स्त्री शरीर के प्रति आकर्षित होता है । इस आकर्षण के द्वारा आत्मा अपार पाप कर्म का बंध करके चार गतियों में भटकती रहती है । **विषयसुख को पाने के लिए चाहे जितना श्रम और चाहे जितनी मार खानी पडे, विषयासक्त मन उन विषयों को छोडने तैयार नहीं होता है ।**

1444 महाग्रंथों के रचयिता याकिनी महत्तरासुनू **सूरिपुरंदर श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी म.सा.** ने अष्टक प्रकरण में मन को अंतरंग धन बताया है । वे कहते है–

चित्तरत्नमसंक्लिष्टमान्तरं धनमुच्यते ।
यस्यतन्मुषितंदोषैस्तस्य शिष्टाः विपत्तयः ।।

अर्थात्–मन रुपी महामूल्यवान रत्न आत्मा का अंतरधन कहा जाता है । जिसका यह रत्न, दोष रुपी चोरों से चुरा लिया गया हो उसके जीवन में मात्र आपत्तियाँ ही बची रहेगी ।

जैसे रत्न की प्राप्ति दरिद्र जीवों को नहीं होती, वह तो धनवानों को ही मिलता है, वैसे ही अनंतानंत जीवों में से मन की प्राप्ति पुण्यशाली जीवों को ही होती है । एकेन्द्रिय से असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को मन प्राप्त नहीं हुआ है । मन मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को ही मिला है ।

वस्तु जितनी मूल्यवान होती है, उसकी सुरक्षा के प्रबंध भी उतने ही अधिक होने चाहिए । सोने चांदी की दुकानों में माल कीमती होता है तो सुरक्षा के लिए बंदूकधारी चौकीदार भी तैनात किया जाता है, जबकि साग-सब्जी, मटके आदि रास्ते में खुली लारी पर बेचे जाते है उन्हें कोई कुछ चुरा भी ले तो बडा नुकसान नहीं होता, **परंतु कोई सोने चांदी या रत्न के एक नंग को भी चुरा ले तो हजारों और लाखों रुपयों का नुकसान हो जाता है ।**

हमें मिला मन तो सोने-चांदी या रत्न से भी अधिक कीमती है । सोने, चांदि या रत्न के नुकसान की तो भरपाई हो सकती है, परंतु मन रुपी रत्न के नुकसान की भरपाई होना कठिन है ।

इस मन रुपी रत्न को चुराने के लिए दोष रुपी चोर चारों ओर सतर्क होकर बैठे है । कही छोटा-सा भी छिद्र मिले और लूंटा नहीं । यदि दोषों के द्वारा हमारे मन रुपी रत्न चुरा लिया गया तो अनेक पापाचारों के द्वारा दोष रुपी चोर आत्मा को भवोभव भटका कर सिर्फ दु:ख ही देनेवाला है ।

कलिकाल सर्वज्ञ आचार्य श्री हेमचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा. ने योगशास्त्र के चतुर्थ प्रकाश में संसार से मुक्ति पाने के लिए **मनो विजय** पर खूब भार दिया है । वे कहते है **''मनोजय के बिना पांच इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं हो सकता, न ही कषाय क्षय कर सकते है । कषाय क्षय बिना आत्मा की मुक्ति अशक्य है । इन्द्रिय और कषाय पर विजय पाने के लिए मनोजय अत्यंत आवश्यक है ।''**

मन शुद्धि के बिना जो मोक्ष के लिए तपश्चर्या करते है, वे वास्तव में नाव को छोडकर अपनी दोनों भुजाओं से महासमुद्र को तैरने की इच्छा

करते है । **जैसे आँखों से अंधे व्यक्ति के लिए दर्पण में देखना निरर्थक है वैसे ही मनशुद्धि के बिना ध्यान साधना भी निरर्थक है ।**

मनशुद्धि के बिना सभी प्रकार के व्रत-नियम मात्र कायाक्लेश के समान है । निरंकुश मन रुपी राक्षस आत्मा को संसार रुपी गहरे खड्डे में गिराता रहता है । **जो आत्मा मोक्ष की इच्छा करती है उसे विश्व में भटकते इस मन रुपी बंदर को प्रयत्न पूर्वक नियंत्रित करना चाहिए ।**

मन की शुद्धि के बिना अन्य सभी सद्गुण भी दुर्गुण बन जाते है और मन की शुद्धि के साथ सभी दुर्गुण भी सद्गुण बनते देर नहीं लगती है अतः बुद्धिशाली पुरुष की मन शुद्धि के लिए प्रयत्न करना चाहिए ।''

अध्यात्म कल्पद्रुम ग्रंथ के रचयिता **आचार्य श्री मुनिसुंदरसूरीश्वरजी म.सा.** मन को बालक की उपमा देते है । अपने मन रुपी बालक को समझाते हुए **अध्यात्म कल्पद्रुम** में वे कहते है–

चित्त बालक ! मा त्याक्षीरजस्रं भावनौषधीः ।
यत्त्वां दुर्ध्यानभूता छलयन्ति छलान्विषः ।।

अर्थात्–हे मन रुपी बालक ! तुम शुभ भावना रुपी औषधि का कभी त्याग मत करो । यदि तुम शुभ भावनाओं को छोडोगें तो छल को देखने वाले आत्मिक लुटेरे तुम्हें लूंट लेंगे ।

बालक की सुरक्षा माँ की गोद में है, यदि वह माता की गोद को छोड देता है तो हिंसक प्राणी उस पर हमला कर सकते है, वैसे ही मन की सुरक्षा भी शुभ भावनाओं के अधीन है ।

यदि मन रुपी बालक को शुभ भावना रुपी औषधि, जडीबुटी आदि रक्षक सामग्री से सुरक्षित किया गया, तो दुर्ध्यान रुपी दुष्ट राक्षस से इसका रक्षण हो सकता है, अन्यथा अशुभ विचार रुपी राक्षस मन का भक्षण किए बिना नहीं रहेगा ।

प्रसन्नचन्द्र राजर्षि

पोतनपुर के राजा प्रसन्नचन्द्र अपने नगर में महावीर प्रभु के आगमन को सुनकर बडे आडंबर के साथ धर्मदेशना सुनने गये । प्रभु की देशना का सुनकर राजा का मोह दूर हो गया । समस्त बंधनों का त्याग कर श्रमणधर्म को स्वीकार करने के लिए तैयार हो गये । अपने लघुपुत्र को राजगद्दी पर स्थापित किया एवं सभी मंत्रियों के कंधों पर राज्य की जिम्मेदारी सौंपकर उसने प्रभु के पास दीक्षा स्वीकार कर ली ।

ज्ञान-ध्यान की साधना कर वे शास्त्र में पारगामी बने । एक दिन वे राजगृही नगरी के बाहर श्मशान भूमि में एक पैर पर खडे होकर सूर्य के सामने अपनी दृष्टि स्थापित करके आतापना ले रहे थे ।

प्रभु को वंदन करने के लिए श्रेणिक राजा अपने सैन्य के साथ जा रहे थे । सबसे आगे सुमुख और दुर्मुख चल रहे थे । सुमुख ने उनकी साधना देखकर प्रशंसा की –**''अहो ! धन्य है इनको जो इस युवा अवस्था में दीक्षा लेकर कठोर साधना कर रहे है ।''**

तब दुर्मुख बोला–**''अरे ! यह भी कोई साधु है ? अपने पोतनपुर नगर का राज्य का भार एक छोटे से बालक पर डालकर स्वयं साधु बन गए । उन्हें प्रजा की क्या चिंता है ? सभी मंत्री चंपा के दधिवाहन राजा के पक्ष में हो गए है । अब तो राज्य भी चला जाएगा । प्रजा हैरान हो जाएगी । इसका पुत्र भी राज्य से भ्रष्ट हो जाएगा । इसकी पत्नी तो पहले से ही भाग गई है । इसलिए यह कोई साधु नहीं बल्कि स्वार्थी है ।''**

सुमुख की प्रशंसा का राजर्षि के मन पर कोई असर नहीं हुआ, परंतु दुर्मुख के इन वचनों को सुनकर वे धर्मध्यान से च्युत होकर आर्तध्यान में डुब गए । मंत्रियों को धिक्कारते हुए वे कठोर दंड देने का विचार करने लगे । अपने महाव्रतों को भूलकर मनोमन युद्ध चालू कर दिया ।

श्रेणिक महाराजा उनकी बाह्य साधना को देखकर भावपूर्वक वंदन करके प्रभु के पास पहँचे । प्रभु को वंदन कर प्रसन्नचन्द्र राजर्षि के विषय की शंका का समाधान पाने के लिए प्रश्न किया–**''जिस समय मैंने प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को वंदन किया, तब यदि उनका आयुष्य पूर्ण हो तो वे कहाँ जाए ?''**

प्रभु ने कहा–सातवीं नरक में ।

बडे आश्चर्य को जताते हुए पुनः पूछा, **'यदि अब उनका आयुष्य पूर्ण हो तो मरकर कहाँ जाए ?'**

प्रभु ने कहा, **'अनुत्तर देव विमान में ।'**

उसी समय देव-दुंदुभि का नाद हुआ । श्रेणिक महाराजा ने पुनः पूछा–**'ये देवदुंदुभि क्यों बज रही है ?'**

प्रभु ने कहा–प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को केवलज्ञान हुआ है ।

श्रेणिक महाराजा ने पूछा–**''प्रभो ! कुछ देर पहले सातवीं नरक, क्षण भर बाद अनुत्तर विमान और अब केवलज्ञान, यह कैसे ?''**

प्रभु ने कहा–जब तुमने उन्हें वंदन किया तब उनके मन में घमासान युद्ध चल रहा था । यदि उस समय वे आयुष्य पूर्ण करते तो सातवीं नरक में जाते, परंतु मानसिक युद्ध करते करते उनके सभी शस्त्र खत्म हो गए । एक शत्रु बचा था, जिसे मारने के लिए उन्होंने मुकुट उठाने के लिए अपने हाथ को सिर पर रखा । तब उन्हें ख्याल आया कि मैं तो साधु हूँ । अब मनोमन अपने पापों का पश्चात्ताप करने लगे । पश्चात्ताप के भाव से अपने घाति कर्मों का क्षय करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया ।

कुछ क्षण में सातवीं नरक और कुछ क्षणों के बाद आत्मा को मोक्ष में ले जाने की शक्ति मन की है । अतः इस मन पर विजय पाने के लिए विशेष प्रयत्नशील बनना चाहिए ।

संसार में सार क्या ?

मनोलयान्नास्ति परो हि योगो,
ज्ञानं तु तत्त्वार्थ, विचारणाच्च ।
समाधि-सौख्यान्न परं च सौख्यं,
संसारसारं त्रयमेतदेव ।।29।। (उपजाति)

शब्दार्थ

मनोलयात्=मानसिक स्थिरता से बढकर,
नास्ति=नहीं है,
परो=दूसरा श्रेष्ठ,
योगो=मोक्ष का मार्ग,
ज्ञानं=सम्यग्ज्ञान,
तु=वास्तव में,
तत्त्वार्थ विचारणाच्च=तत्त्वज्ञान के विचार से बढकर,
च=ओर,
समाधिसौख्यात्=समता भाव के सुख से बढकर,
न=नहीं है,
परं=दूसरा श्रेष्ठ,
च=और,
सौख्यं=सुख है,
संसारसारं=असार इस संसार में सारभूत,
त्रयं=तीन,
एतद्=ये,
एव=निश्चय से है ।

गाथार्थ

मानसिक स्थिरता से बढकर दूसरा कोई श्रेष्ठ मोक्ष का मार्ग नहीं है, तत्त्वार्थ के विचार से बढकर दूसरा कोई श्रेष्ठ सम्यग्ज्ञान नहीं है और समताभाव के सुख से बढकर दूसरा कोई श्रेष्ठ सुख नहीं है । वास्तव में असार इस संसार में ये तीन तत्त्व ही सार है, बाकी सारा संसार असार है ।

विवेचन

फुला हुआ गुब्बारा चाहे कितना भी बडा क्यों न हो, भीतर से तो वह खाली ही होता है । केले के वृक्ष का थड बाहर से चाहे कितना ही मोटा हो, एक-एक छाल दूर करते जाए तो भीतर से वह खाली ही होता है । प्राकृतिक नजारों में पर्वत का दृश्य दूर से खूब सुहावना और मनमोहक दिखता है परंतु पास जाने पर पेड और पत्थर के अलावा और कुछ नहीं मिलता है । वैसे ही संसार शब्द में सार शब्द का समावेश हुआ है फिर भी वास्तविकता यह है कि इस संसार में कुछ भी सार नहीं है । सारा संसार असार है ।

असार इस संसार में भी जो तत्त्व आत्मा को मोक्ष के साथ जोडे ऐसे तीन तत्त्वों को ग्रंथकारश्री ने सार के रुप में बताए है– **1) मनो योग की स्थिरता । 2) तत्त्वार्थ की विचारणा 3) समाधि का सुख ।**

ये तीनों तत्त्व यदि जीवन में आ जाए तो मनुष्य चाहे कैसी भी स्थिति में रहा हो, मोक्ष का सुख उसे यहीं चखने को मिल सकता है ।

मन क्या है ?

संसारी जीवों को प्राप्त हुई शक्तियों में सबसे बडी शक्ति यदि कोई हो तो वह मन है । इसके दो प्रकार है–

1) द्रव्यमन – जो मन मनोवर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करके बना है, वह द्रव्यमन है । द्रव्यमन के बिना जीव संकल्प-विकल्प नहीं कर सकता है । सुख प्राप्ति और दु:ख मुक्ति पाने के लिए जो लम्बी सोच होती है वह द्रव्यमन के कारण ही होती है ।

2) भावमन – जो मन आत्मा के उपयोग स्वरुप है, वह भावमन है । संसार में रहे सभी छद्मस्थ जीवों की यह भावमन होता है । केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद भावमन नहीं रहता है । इसलिए केवलज्ञानी को विशेष कर्मों

का बंध नहीं होता है । **संसारी छद्मस्थ जीव को शुभ उपयोग से पुण्य कर्म का बंध और अशुभ उपयोग से पाप कर्म का बंध होता है ।**

द्रव्यमन की शक्ति मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों के पास ही होती है । शेष सभी एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को द्रव्यमन नहीं होता है । द्रव्यमन के अभाव में इन जीवों को कोई विशेष संकल्प-विकल्प नहीं होते है ।

सिर्फ पूर्वजन्मों के संस्कार के कारण आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञा के आधार से कुछ-न-कुछ प्रवृत्तियाँ होती है । द्रव्यमन से रहित इन सभी असंज्ञी जीवों का विकास और पतन भी सीमित होता है ।

आत्मा का जो विशेष विकास और पतन होता है वह मात्र संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को ही होता है । भाव मन के साथ द्रव्य मन जुडकर संकल्प-विकल्प होते है, उसी से शुभ-अशुभ विचार पैदा होकर कर्मबंध का कारण बनता है ।

देवता मरकर मनुष्य और तिर्यंच गति में जा सकते हैं ।

नारक मरकर मनुष्य और तिर्यंच गति में जा सकते हैं ।

तिर्यंच मरकर चारों गति में जा सकते है और

मनुष्य मरकर चारों गति से अतिरिक्त पंचमी गति-मोक्ष में भी जा सकता है ।

मन, वचन और काया की तीन शक्तियों में से सबसे बडी शक्ति मन की है । मन ही आत्मा के लिए संसार में बंधन और संसार की मुक्ति का कारण है ।

मन ही नरक में ले जाता है, मन ही पशु और मनुष्य बनाता है, मन ही देव गति का कारण है और मन ही केवलज्ञान प्रदान कर अपनी आत्मा को मोक्ष में ले जाता है । **मन जहाँ जुडता है, वैसे विचार आते है । अतः मन पर नियंत्रण खूब जरुरी है ।**

वर्तमान जीवन शैली में व्यक्ति के पास बाह्य सामग्री तो भरपूर है । अधिकांश जीवन के कार्य यांत्रिक साधनों के द्वारा तेजी से और बडी आसानी से किये जा रहे है । पूर्व में जिन कार्यों को करने के लिए महिनों और वर्षों लगते थे । आज यांत्रिक साधनों के माध्यम से वे सारे कार्य चुटकी बजाते ही हो जाते है ।

एक छोटे से समाचार पहुँचा देने के लिए पूर्व काल में संदेश वाहक मनुष्यों को दौडाएँ जाते थे । कई समस्याएं तो ऐसे होती कि संदेश पहुँचने तक तो समस्याओं का समाधान भी हो जाता था । सारे समाचार सभी को जानने भी नहीं मिलते थे और आज ! आज तो घटना एक जगह पर बनती है और क्षण भर में पूरे विश्व में समाचार फैल जाते है । संदेश-वाहक मनुष्य का कार्य मोबाईल आदि यांत्रिक साधनों से होने लगा है ।

भले ही इस तेज-तर्राज युग में जीने वाला व्यक्ति अपनी इस वैज्ञानिक सिद्धि पर गर्व का अनुभव करता हो, परंतु वह नहीं जानता कि इस तेज युग में सभी साधनों के बीच उसके जीवन में से शांति का सुख लुप्त हो गया है । जीवन में सब कुछ है परंतु शांति नहीं है ।

पहले लोग कच्चे मकानों में रहते थें, आज बंगलों और फ्लेटों में रहते हैं ।

पहले कहीं आने-जाने के लिए लोग पैदल चलते या बैलगाडियों का उपयोग करते, आज यन्त्रों के माध्यम से कुछ घंटों में सैकडों कि.मी. की दूरी पार कर लेता है ।

पहले लोग ठंडी-गर्मी से परेशान होते थें, आज ठंडी से बचने लिए हीटर और गर्मी से बचने के लिए कूलर और A.C. का उपयोग कर लेते हैं ।

बाह्य सुख-सुविधाओं के साधन खूब-खूब बढे हैं परंतु आश्चर्य है कि इन सब के बीच मानव भीतर से अशांत और परेशान है । इन सारी परेशानियों का मूल कारण है, मन स्थिर नहीं है ।

अक्सर देखा जाता है कि नगर में जब किसी बडे धनवान व्यक्ति की मृत्यु होती है तब उसकी श्मशान यात्रा में लोगों की भीड होती है और फिर दूसरे दिन उसकी प्रार्थना सभा में । प्रार्थना सभा में सभी लोग उसके जीवन में किये अच्छे कार्यों की प्रशंसा करते है और अंत में एक ही बात करते है कि ``हे प्रभो ! स्वर्गस्थ आत्मा जहां कहीं भी हो, उसे शांति देना ।'' मरने के बाद हर कोई मृतक की शांति की प्रार्थना इसीलिए करते है कि जीते जी उसके पास सब कुछ था, परंतु उसके पास शांति नहीं थी ।

व्यक्ति मानसिक शांति पाने के लिए बाहर भटकता रहता है । Weekend के दिनों में सभी Resorts और Hotels भरे हुए रहते हैं । लोग सोचते है कि हफ्ते के पांच दिन Office में काम करने से जो शारीरिक और मानसिक तनाव हुआ है, उसे मौज-शोक और आराम करके दूर करेंगे । परंतु Resorts और Hotels में भी शांति कहां मिलती है ?

बाह्य परिस्थिति का निर्माण हमारे कर्मों के अनुसार होता है । उसमें परिवर्तन करना हमारे बस की बात नहीं है, परंतु मनःस्थिति का निर्माण हम हमारे ही विचारों के अनुसार कर सकते है ।

बाह्य संयोगों को बदलना हमारे वश में नहीं है, परंतु उन सभी अनुकूल और प्रतिकूल संयोगों में अपने मन को कैसे प्रसन्न रखना यह हमारे वश में है ।

परमात्म–शासन की इस विश्व को सबसे बडी और अमूल्य भेट यदि कोई है, तो वह है–स्याद्वाद दृष्टि । यह एक ऐसी दृष्टि है कि जिससे व्यक्ति या पदार्थ का सही मूल्यांकन करके हम हर संयोग में अपने चित्त को प्रसन्न रख सकते है ।

स्याद्वाद दृष्टि-परम तत्त्व

किसी भी व्यक्ति या वस्तु को एक ही दृष्टिकोण से देखना-एकान्त दृष्टि है । जबकि उन्हीं व्यक्ति या वस्तुओं को अन्य सापेक्ष दृष्टि से देखना

स्याद्वाद दृष्टि है । जगत् में रहे सभी व्यक्ति और वस्तु में परस्पर विरोधी अनंत धर्म रहे हुए है ।

जैसे 1) रामचन्द्रजी, पिता दशरथ की और माता कौशल्या की अपेक्षा से पुत्र थे तो अपने दोनों पुत्र लव और कुश की अपेक्षा से पिता भी थे । कोई ऐसा प्रश्न करे कि एक ही व्यक्ति पुत्र और पिता दोनों विरोधी सम्बन्ध वाला कैसे हो सकता है ? तब कहना पडेगा कि वह अपने माता-पिता की अपेक्षा से पुत्र है जबकि अपनी संतान की अपेक्षा से पिता भी है ।

2) एक व्यक्ति को सात कटोरों में विविध तापमान वाला पानी दिया गया । पहले से दुसरे कटोरे का पानी और दूसरे से तीसरे कटोरे का पानी अधिक-अधिक ठंडा था । जब उसे पूछा गया कि पहले कटोरे का पानी कैसा है ? तब उसका जवाब होगा-ठंडा, दूसरे का–ठंडा, तीसरे का-ठंडा, साँतवे का भी-ठंडा । परंतु जब पुछा जाय कि साँतवें की अपेक्षा पहले कटोरे का पानी कैसा है ? तो कहेगा गर्म है । **पहले ठंडा और अब गर्म, दोनों विरोधी जवाब क्यो ? तब कहना पडेगा, पहले कटोरे का पानी भी वैसे तो ठंडा ही है परंतु साँतवें कटोरे के पानी की अपेक्षा से गर्म है, क्योंकि साँतवें कटोरे का पानी Ice Cold है ।**

यही है स्याद्वाद दृष्टि, अनेकान्त दृष्टि और परमात्म-शासन की अमूल्य भेंट । जिसके जीवन में स्याद्वाद और अनेकान्त दृष्टि हो वह हर स्थिति में परम सुखी बनकर रह सकता है ।

सुबुद्धिमंत्री

जितशत्रु राजा की सभा में सुबुद्धि नाम का प्रधान मंत्री था । जीवन में स्याद्वाद और अनेकान्त दृष्टि होने के कारण वह हर परिस्थिति को सभी दृष्टिकोण से देखता था । सुख-दु:ख के सभी प्रसंगो में समाधि रखने के लिए उसने **''जो होता है वह अच्छे के लिए होता है''** सूत्र को अपनाया था ।

एक दिन जितशत्रु राजा के हाथ की छोटी अंगुली में कोई घाव हो गया । आगे चलकर घाव में सडन हो गई । यह देखकर वैद्य ने राजा की अंगुली कटवा दी । इस स्थिति में राजा दुःख को हल्का करने के लिए मंत्री ने अपना जीवन सूत्र बताते हुए कहा–**'राजन् ! कोई बात नहीं ! जो होता है अच्छे के लिए होता है ।'** मंत्री के इन वचनों को सुनकर राजा को गुस्सा आ गया । उसने मंत्री को जेल में डाल दिया । तब भी मंत्री ने समता भाव से कहा कि ``जो होता है, अच्छे के लिए होता है ।''

कुछ दिनों के बाद राजा शिकार करने के लिए जंगल में गया । विपरीत शिक्षित घोडा होने से जैसे जैसे राजा घोडे की लगाम खींचता गया वैसे वैसे रुकने के बजाय वह घोडा और तेज दौडता था । सारे सैनिक पीछे रह गए । राजा गहन जंगल में भीलों की बस्ती में पहुँच गया । भीलों ने उसे पकड लिया और उसकी बली चढाने की तैयारी की ।

बली का नाम सुनते ही राजा घबरा गया । बली चढाने के लिए उन्हें अखंड शरीर वाले और 32 लक्षण वाले पुरुष की आवश्यकता थी । भीलों ने राजा के शरीर की जाँच की । 32 लक्षण तो देखे लेकिन उसके हाथ की अंगुली कटी हुई थी । भीलों ने उसे छोड दिया । अब उसे मंत्री की बात याद आयी–**``जो होता है वह अच्छे के लिए होता है ।''**

भीलों की कैद से छुटकर राजा राजमहल की ओर आगे बढा । आगे चलकर उसे अपने पीछे छुटे हुए सैनिक मिल गए । राजमहल में जाकर उसने अपने मंत्री को जेल से मुक्त कर राज सभा में बुलाया । राजा ने माफी मांगते हुए कहा, **'मेरी अंगुली कटने पर तुमने जो कहा कि जो होता है अच्छे के लिए होता है । तुम्हारा वचन सहीं निकला । अंगुली कटने के कारण मैं भीलों की कैद से छूट गया । परंतु जब मैंने तुम्हें जेल भेजा, वह अच्छे के लिए कैसे हुआ ?'**

मंत्री ने कहा, **'आप शिकार के लिए गए तब मैं यदि जेल में न होता तो मैं भी आपके साथ शिकार के लिए चलता, और भीलों के द्वारा पकडा जाता । उस समय आप तो अंगुली कटने के कारण छुट जाते**

लेकिन मैं फंस जाता । इसलिए मैं जेल में गया तो वह भी अच्छा ही हुआ ।'

ऐसी दृष्टि हमारे जीवन में आ जाए तो हमारे जीवन में सदा दिवाली हो सकती है । इस दुनिया में जितने भी संघर्ष और झगडे होते है वे सभी एकांत दृष्टि के कारण है ।

दुनिया बाह्य संयोगों को सुख-दु:ख का कारण मानती है । यदि बाह्य संयोग अनुकूल होंगे तो सुख और प्रतिकूल होंगे तो दु:ख होगा । परंतु ऐसा एकान्त नियम नहीं है । धन, पुत्र, परिवार, शारीरिक स्वस्थता, जवानी, इज्जत आदि स्थिति अनुकूल होने पर भी यदि मन में अशांति और असमाधि है तो व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता है । इससे विपरित गरीबी, नि:संतान, रोग, बुढापा आदि प्रतिकूल स्थिति होने पर भी यदि मन में शांति और असमाधि है तो व्यक्ति सुखी रह सकता है ।

• व्यापार में एक करोड रुपये का मुनाफा होने पर भी व्यापारी के चेहरे पर उदासीनता थी, क्योंकि उसे दो करोड रुपये के मुनाफे की आशा थी ।

• भरा-पुरा परिवार होने पर भी सभी के विचार अलग-अलग होने से उनके बीच में पारिवारिक प्रेम का अभाव था । सबको एक दुसरों से कुछ-ना-कुछ अपेक्षा थी । सभी के मन में परस्पर यही भाव था कि, ``मैं सब के लिए सभी कार्य करता हूँ पर मेरे लिए कोई कुछ भी नहीं करता है ।''

• बुढिया माजी को सभी प्रकार की सुख सुविधा थी परंतु मन में नाराजगी थी क्योंकि उसका नाश्ता 10 मिनिट देरी से तैयार होता था, जबकि दादाजी खुश थे क्योंकि उन्हें चाय गर्मागर्म मिलती थी ।

• महाराष्ट्र के संत तुकाराम की पत्नी खूब झगडालु थी । उसके स्वभाव को देखकर किसी ने संत तुकाराम को कहा–'आपके उपर ईश्वर की खुब अच्छी महरबानी है, सिवाय आपकी पत्नी के झगडालु स्वभाव के ईश्वर ने यह अच्छा नहीं किया ।'

जवाब में संत ने कहा-अहो ! ईश्वर की तो मुझ पर खुब महेरबानी है कि उन्होंने मुझे झगडालु पत्नी दी है । यदि पत्नी प्रेमालु होती तो मैं उसी में आसक्त हो जाता, परंतु इसके ऐसे स्वभाव के कराण ही मेरा मन घर में नहीं रहकर प्रभुभक्ति में लीन रहता है ।

• सोक्रेटीस की पत्नी खुब झगडालु थी । एक बार मित्रों के साथ सोक्रेटीस घर से बाहर जाने की तैयारी कर रहा था । अचानक उसकी पत्नी ने उसके ऊपर गंदे पानी से भरी बाल्टी डाल दी ।

सोक्रेटीस के मित्रों को उस पर खुब गुस्सा आया, परंतु सोक्रेटीस शांत थे । उन्होंने कहा-**''कभी-कभी बादल पहले गरजते है, फिर बरसते है । आज बिना गरजे ही बरस गए है ।''**

मित्रो ने पूछा–**''ऐसी पत्नी के साथ तुम जीवन कैसे बिताते हो ?''**

सोक्रेटीस बोले–**''मैं प्रतिदिन जो तुम्हें सहनशीलता की बातें समझाता हूँ और तुम मेरी बातें मान लेते हो वह इसी को आभारी है । ऐसी पत्नी नहीं मिलती तो मुझे सहन करने का दृढ अभ्यास कदापि नहीं होता ।''**

• गुरु शिष्य साथ-साथ चल रहे थे । अचानक ऊपर से कचरा गिरा । शिष्य एकदम भडक उठा । तब गुरु ने उसे समझाते हुए कहा **'गुस्सा क्यों करते हो, अच्छा है हम पर कचरा ही गिरा है, बाकि हमारे कर्म तो इतने भारी है कि हमपर पत्थर पडे तो भी कम है ।'**

परिस्थिति समान होने पर भी हम उस परिस्थिति में क्या विचार करते है यह हमारे हाथों में है । सकारात्मक विचारों से हम कर्म निर्जरा, पुण्यबंध और प्रसन्नता की कमाई कर सकते है, जबकि नकारात्मक विचारों से हम पाप कर्मों का बंध और हताशा भरा जीवन जी सकते है । अब यह हम पर निर्भर करता है कि हम अपनी मानसिक शक्ति का क्या उपयोग करते है ।

चित्त प्रसन्नता की महिमा

याः सिद्धयोऽष्टावपि दुर्लभा ये,
रसायनं-चाञ्जन-धातुवादाः ।
ध्यानानि मन्त्राश्च समाधियोगा-
श्चित्तेऽप्रसन्ने-विषवद् भवन्ति ।।30।। (उपजाति)

शब्दार्थ

याः=जो,
सिद्धयः=अणिमा आदि,
अष्टौ=आठ की संख्या में रही सिद्धियाँ,
अपि=भी,
दुर्लभा=दुःखपूर्वक प्राप्त होने वाली,
ये=जो,
रसायनं=औषधियाँ,
च=और,
अञ्जन=आँख में डालने योग्य काजल,
धातुवादाः=ताम्र को सुवर्ण करनेवाले पदार्थ,
ध्यानानि=चित्त की एकाग्रता,
मन्त्राः=ॐकार आदि पदावली,
समाधियोगाः=मन, वचन, काया की एकता रुप प्रवृत्ति,
चित्तेऽप्रसन्ने=मन अप्रसन्न होने पर,
विषवद्=जहर के समान,
भवन्ति=वे सब होते है ।

गाथार्थ

दुनिया में रही जो दुर्लभ अष्टसिद्धियाँ है, औषधियाँ है, अंजन है, धातुवाद है, ध्यान है, मंत्र जापादि है अथवा समाधियोग है, ये सभी शक्तियाँ मन की अप्रसन्नता होने पर विष के समान आत्महितकारी नहीं है ।

विवेचन

मन बहुत छोटा है । संस्कृत भाषा में मनस् शब्द नपुंसक लिंग में प्रयोग किया जाता है । अत्यंत छोटा और नपुंसक होते हुए भी यह मन बडे-बडे महापुरुष और शुरवीरों को नचाने में कोई कमी नहीं छोडता है । इस छोटे से मन को समझने के लिए पूर्वाचार्यों ने हजारों श्लोक लिखे है । पिछले दो श्लोकों में मन की स्थिति को समझाने पर भी ग्रंथकारश्री पुनः इस श्लोक में अप्रसन्न मन के नुकसान बता रहे है ।

अष्टसिद्धि, नवनिधि, अदृश्यकारी अंजन, शक्तिवर्धक औषधियाँ, सुवर्णसिद्धि दायी धातुवाद, ध्यानसाधना, मंत्रजाप और समाधियोग–ये सभी शक्तियाँ यदि मन प्रसन्न है तो ही लाभदायी है और यदि मन अप्रसन्न है, तो ये सारी शक्तियाँ स्व-पर दोनों के लिए नुकसान कारक है ।

(1) अष्टसिद्धियाँ :– वैसे तो आत्मा के भीतर अनंत शक्तियाँ सत्ता के रूप में रही हुई है परंतु कर्मों के आवरण से लिप्त आत्मा इन शक्तियों का उपयोग नहीं कर सकती है । पूर्वजन्म के विशिष्ट पुण्योदय अथवा इस जन्म की तप-साधना के बल पर साधक को अष्ट महासिद्धियाँ प्राप्त होती है । इन सिद्धियों का स्वरूप इस प्रकार है–

1) अणिमा :– इस सिद्धि से व्यक्ति अपने विशालकाय शरीर को अणु जितना अत्यंत छोटा बना सकता है । कमल की नाल में रहे छिद्र में प्रवेश कर वहाँ सर्वोच्च सुख का अनुभव कर सकता है ।

2) महिमा :– इस सिद्धि से व्यक्ति अपने अणु जितने शरीर को मेरु पर्वत प्रमाण एक लाख योजन जितना लम्बा बना सकता है । जैसे नमुचि मंत्री को सबक सिखाने के लिए विष्णुकुमार महामुनि ने किया था ।

3) लघिमा :– इस सिद्धि से व्यक्ति अपने भारी शरीर को वायु अथवा रुइ से भी हल्का बना सकता है । जैसे कुमारपाल राजा को जैन धर्म से चलित करने के लिए देवबोधि ने छोटे बच्चों द्वारा उठाई जानेवाली

केले के पत्तों से बनी पालखी में सवारी की थी । उस समय कुमारपाल राजा को पुनः जैन धर्म में स्थिर करने के लिए पूज्य हेमचन्द्राचार्यजी ने सात पाटों पर प्रवचन देना शुरु किया और आगे चलकर सातों पाटें दूर करवा दी, फिर भी वे वहीं पर स्थिर रह सके ।

4) गरिमा :– इस सिद्धि से व्यक्ति अपने हल्के शरीर को वज्र की तरह भारी बना सकता है । जैसे मेघरथ राजा की परीक्षा करने आये देव ने तराजु में बैठकर कबुतर के रुप में अपना वजन इतना बढा दिया कि तराजु के दूसरे पलडे में स्वयं मेघराथ राजा बैठ गए तो भी दूसरा पलडा ऊपर नहीं उठा ।

5) प्राप्ति :– इस सिद्धि से व्यक्ति जमीन पर रहते हुए भी अपने हाथों से मेरु पर्वत के शिखर का स्पर्श कर सकता है ।

6) अणिमा :– इस सिद्धि से व्यक्ति जल में भूमि की तरह चल सकता है और भूमि में जल की तरह डुबकी लगाते हुए तैर सकता है अथवा इस सिद्धि से व्यक्ति जो भी इच्छा करे वह पूर्ण कर सकता है ।

7) इशित्व :– इस सिद्धि से व्यक्ति तीर्थंकर, चक्रवर्ती, इन्द्र आदि बडे से बडे पद की ऋद्धि का निर्माण कर सकता है ।

भगवान महावीर स्वामी ने अंबड परिव्राजक के द्वारा महासती सुलसा को धर्मलाभ कहलाया । उसके समकित की परीक्षा करने के लिए अंबड परिव्राजक ने पहले तीन दिन नगरी के दरवाजों पर ब्रह्मा-विष्णु और महेश की ऋद्धि का निर्माण किया और अंत में चौथे दिन 25 वें तीर्थंकर के रूप में समवसरण आदि की ऋद्धि का निर्माण किया था ।

8) वशित्व :– इस सिद्धि से व्यक्ति जगत् के सभी लोगों को अपने वश में कर सकता है ।

इन अष्टसिद्धियों से अतिरिक्त और भी अनेक लब्धियाँ और सिद्धियाँ शास्त्रों में निर्दिष्ट है ।

(2) रसायन :– कई ऐसे रसायन और औषधियाँ होती है, जिसके बल पर व्यक्ति अपनी मनोकामनाएँ पूर्ण कर सकता है । कई कथानकों में ऐसी गुटिकाओं की बात आती है जिससे व्यक्ति अपना मनचाहा रुप बना सकता है ।

चण्डप्रद्योत राजा को अपना पति बनाने के लिए कुब्जिका ने अपना देवांगना समान रुप बना दिया था । अपनी उम्र को छुपाने के लिए ऐसे शक्तिदायक रसायनों का लोग उपयोग करते है, जिससे वे सदा युवान दिखते है ।

(3) अञ्जन :– आँख में प्रयोग किये जाने वाले कई अञ्जन आते है, जिससे आँख का तेज बढता है, तो कई अञ्जन के प्रयोग से व्यक्ति पूर्णतः अदृश्य हो जाता है ।

दुष्काल के समय भिक्षा नहीं मिलने पर दो बाल साधुओं ने अञ्जन का प्रयोग कर चन्द्रगुप्त मौर्य की थाली से भोजन ग्रहण कर अपना निर्वाह किया था और अपने गुरु की सेवा की थी ।

(4) धातुवाद :– जगत् में अनेक प्रकार की धातुएँ है । सोना-चांदी आदि अनेक धातुएँ कीमती मानी जाती है और लोहा, ताम्बा, पीतल आदि धातुएँ सस्ती और मूल्यहीन मानी जाती है । सस्ती धातुओं को मूल्यवान बनाने का कार्य धातुवाद से होता है ।

तेजंतुरी, स्वर्णरस, पारा आदि से होनेवाले कई धातुवाद की प्रक्रियाएँ है जिससे ताम्बे आदि धातुओं को सोने के रुप में परिवर्तन किया जा सकता है और कई ऐसी भी प्रक्रियाएँ है जिससे सोने को पारें में छुपाया जा सकता है ।

शास्त्रों में ऐसा कई उदाहरण आते है–जैसे धन्नाजी को बालक समझ कर समुद्रमार्ग से आये जहाज में से व्यापारियों ने मिट्टी से भरे मटके बेच दिये थे । परंतु पुण्यशाली धन्नाजी के पुण्य के प्रभाव से वह

मिट्टी कोई साधारण मिट्टी नहीं बल्कि तेजंतुरी निकली । तेजंतुरी को ताम्बे पर लगाने से ताम्बा सोने में बदल जाता है ।

(5) ध्यान :– चञ्चल मन को स्थिर करने के लिए कई अलग-अलग प्रकार की ध्यान की प्रक्रियाएँ देखने मिलती है । जैसे विपश्यना ध्यान प्रक्रिया द्वारा कई विद्यार्थी 8-10 दिनों की शिबिर करते है ।

(6) मन्त्र :– ॐ पद से प्रारंभ होकर स्वाहा पद से अंत होनेवाले अथवा नमस्कार पद वाले हजारों प्रकार के मंत्र होते हैं । मंत्र की दुनिया खुब बडी है । कई ज्ञान प्राप्ति के, कई धन प्राप्ति के, कई रोहिणी आदि विद्या प्राप्ति के, कई रोग निवारण के, कई सर्पदंश निवारण के तो कई वशीकरण के मंत्र होते है । **कई मंत्र मात्र एक बार जपने से सिद्ध होते है, कई हजारों बार जपने से तो, कई करोडों बार जाप करने से सिद्ध होते है ।**

(7) समाधियोग :– मन-वचन और काया की एकाग्रता प्राप्त करने के लिए अनेक प्रकार के समाधि योगो की साधनाएँ है । जैसे पातांजल योग दर्शन में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि रुप योग के आठ अंग बताए गए है । याकिनी महत्तरासुनु सुरिपुरन्दर **श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी म.सा.** ने इन्हीं आठ योगांगों की प्राप्ति योग की आठ दृष्टियों के माध्यम से योगदृष्टि समुच्चय ग्रंथ में बताई है ।

ग्रंथकार श्री चित्त की प्रसन्नता का महत्त्व बताते हुए यही कह रहे है कि अष्टसिद्धियाँ, औषधि, अंजन, धातुवाद, ध्यान, मन्त्र और समाधियोगों की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है । जैसे किसी जन्मान्ध व्यक्ति को आँखें प्राप्त होना दुर्लभ है अथवा जीवन भर दर-दर ठोकरे खाने वाले किसी द्ररिद्री व्यक्ति को चिन्तामणि रत्न की प्राप्ति होना दुर्लभ है वैसे ही अल्पपुण्य वाले जीवों के लिए इन सारी विशिष्ट शक्तियों की प्राप्ति होना दुर्लभ है ।

कदाचित् किसी देवता की साधना से हठयोग के बल पर कोई साधक इन शक्तियों को प्राप्त कर सकता है, परंतु इनकी प्राप्ति के बाद यदि मन संकल्प-विकल्पों से व्याप्त हो, दुनियाभर में प्रसिद्धि की चाहना हो, किसी

दुश्मन से बदला लेने की दुर्भावना से विचलित हो अथवा किसी प्रकार से अशांत हो तो इन शक्तियों के दुरुपयोग की पूरी शक्यता है । **अतः इन सभी शक्तियों की प्राप्ति से भी महत्त्वपूर्ण मन की प्रसन्नता है ।**

इन सभी शक्तियों की प्राप्ति से मन की प्रसन्नता पाना अतिदुर्लभ है । **मन की प्रसन्नता के साथ ये सारी शक्तियाँ अमृत की तरह स्व-पर सभी को लाभदायी हो सकती है और मन यदि अप्रसन्न है तो ये सारी शक्तियाँ शीघ्रघाति विष से भी अति भयंकर और स्व-पर के लिए घातक है ।**

रहस्य यही है कि दुनिया की सभी शक्तियों की प्राप्ति के पहले चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करने की जरुरत ज्यादा है ।

प्रश्न :– चित्त की प्रसन्नता का उपाय क्या है?

उत्तर :– योगिराज श्री आनंदघनजी महाराज ने प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव स्वामी के स्तवन में चित्त की प्रसन्नता का उपाय बताया है । कहा है–

चित्त प्रसन्ने रे पूजन फल कह्युं,
पूजा अखंडित एह ।
कपट रहित थई आतम अर्पणा,
आनंदघन पद रेह ।।
ऋषभ जिनेश्वर प्रितम महारो ।।

वे कहते है-निष्कपट भाव से प्रभु के प्रति आत्मसमर्पण करना प्रभु की श्रेष्ठ प्रकार की पूजा है । ऐसी पूजा ही अपने चित्त की प्रसन्नता का उपाय है ।

पूज्य आचार्य देव श्री मानदेवसूरीश्वरजी म.सा. ने लघुशांति की 18 वीं गाथा में लिखा है–

``मनः प्रसन्नतामेति पूज्यमाने जिनेश्वरे ।।''

अर्थात् :– प्रभु की पूजा का तत्काल फल यदि कोई है तो वह है चित्त की प्रसन्नता । केशर आदि बहुमुल्य द्रव्य से प्रभु प्रतिमा पर तिलकादि करना ही प्रभु की पूजा नहीं है परंतु भावपूर्वक एकाग्र मन से प्रभु की आज्ञा का पालन करना, प्रभु की सच्ची पूजा है ।

मन जब भावपूर्वक प्रभु भक्ति में लयलीन हो जाता है तब अमृत क्रिया होती है । अमृत क्रिया का लक्षण **उपाध्याय श्री यशोविजयजी** ने **श्रीपाल रास** में बताया है–

तद्गतचित्त ने समयविधान,
भावनी वृद्धि भवभय अतिघणोजी ।
विस्मय पुलक प्रमोद प्रधान,
लक्षण ए छे अमृत क्रिया तणो जी ।।

अर्थात्–

1) धर्मक्रिया में एकाग्रता,

2) शास्त्रानुसारी क्रिया,

3) भाव की अभिवृद्धि,

4) भव भ्रमण का अत्यंत भय,

5) क्रिया के रस से चित्त का विस्मय,

6) रोमराजि विकस्वरित होना,

7) अत्यंत हर्ष होना ।

उपाध्यायजी भगवंत आगे कहते है जैसे रोगी मनुष्य को एक बार अमृत का अंश भी प्राप्त हो जाय, उसके बाद अन्य औषध की आवश्यकता नहीं होती वैसे ही यदि एक बार भी अमृत क्रिया हो जाय तो अन्य साधना न होने पर भी साधकात्मा को मोक्ष प्राप्ति में विघ्न नहीं आता है ।

प्रभु भक्ति के माध्यम से मन की प्रसन्नता का लक्ष्य सिद्ध करने में प्रयत्नशील बने ।

समाधि भाव में बाधक

विदन्ति तत्त्वं न यथास्थितं वै,
सङ्कल्पचिन्ताविषयाकुला ये ।
संसारदुःखैश्च कदर्थितानां,
स्वप्नेऽपि तेषां न समाधिसौख्यम् ।।31।। (इन्द्रवज्रा)

शब्दार्थ

विदन्ति=वे सब जानते है,
तत्त्वं=वास्तविकता को,
न=नहीं,
यथास्थितं=जैसा है वैसा,
वै=पाद पूर्ति,
सङ्कल्पचिन्ताविषयाकुला=संकल्प, चिन्ता, विषय आदि की आकुलता,
ये=जो सभी,
संसार-दुःखैश्च=और संसार के दुःखों से,
कदर्थितानां=पीडितो को,
स्वप्नेऽपि=स्वप्न में भी,
तेषां=उनको,
न=नहीं है,
समाधिसौख्यम्=समताजन्य सुख का भाव ।

गाथार्थ

जो व्यक्ति वास्तविक तत्त्वज्ञान को नहीं जानते है, जो संकल्प-चिन्ता, विषय आदि की आकुलता-व्याकुलता से ग्रस्त है तथा जो संसार के दुःखों से पीडित है उनको स्वप्न में भी समता जन्य सुख का भाव प्राप्त नहीं हो सकता है ।

विवेचन

संसार में रहते हुए यदि मोक्ष सुख का आस्वाद लेना हो तो उसके लिए समाधि सिवाय और कुछ भी नहीं चाहिए । वास्तव में देखा जाय तो सिद्धशिला मात्र एक स्थान विशेष है, जो समाधि भाव के फल स्वरूप संसारी जीव को कर्म बंधन से छूटने पर प्राप्त होता है । **जब तक उस स्थान की प्राप्ति न हो तब तक इस संसार में मोक्ष सुख का आस्वाद पाने का यदि कोई उपाय है तो वह है समाधि भाव ।** ग्रंथकार श्री इस श्लोक में समाधिभाव में बाधक तीन भावों का निर्देश कर रहे है ।

1) तत्त्वज्ञान का अभाव ।

2) संकल्प, चिन्ता, विषय आदि की आकुलता ।

3) संसार में दुःख की पीडा ।

इन तीन भावों से मन जब तक व्याप्त है तब तक स्वप्न में भी समाधिभाव की प्राप्ति होना शक्य नहीं है । समाधि भाव पाने के लिए इन तीनों भावों से मुक्ति पाना आवश्यक है ।

समाधि भाव

आत्मा का मूल स्वभाव समाधि भाव है । समाधि अर्थात् न राग के पक्ष में रहना, न ही द्वेष के पक्ष में रहना । समाधि भाव को दो उदाहरण से समझते है–1) तराजू के दोनों पलडे जब खाली होते है अथवा समान भार से भरे होते है तब उसकी सुई एकदम केन्द्र में स्थिर हो जाती है । **परंतु ज्योंही किसी एक पडले में वजन बढ या घट जाता है त्योंही दूसरा पलडा भी नीचे या ऊपर हो जाता है और उसी के साथ उसकी सुई भी अस्थिर हो जाती है ।**

वैसे ही राग-द्वेष के अभाव में आत्मा अपने आत्मिक स्वभाव में रहती है परंतु जैसे ही मन में राग-द्वेष भाव पैदा होते है, समाधि भाव खंडित हो जाता है । तराजु के दोनों पलड़े राग-द्वेष के प्रतीक है, जब ये दोनों पलडे

खाली हो, अर्थात् आत्मा राग-द्वेष से सर्वथा मुक्त हो तब आत्मा अपने परम समाधि भाव में स्थिर हो जाती है ।

अथवा 2) जैसे तालाब का पानी स्थिर और शांत होने पर उसमें हमें अपना प्रतिबिम्ब दिखाई पडता है, परन्तु ज्योंही उस पानी में कोई कंकड़ डालता है, वह पानी हिलने लगता है और उसकी स्थिरता नष्ट हो जाती है ।

उस पानी में प्रतिबिम्ब को ग्रहण करने की योग्यता नष्ट हो जाती है । वैसे ही जब आत्मा अपने स्वभाव में स्थिर और शांत होती है तब आत्मा समाधि भाव को प्राप्त कर लेती है । परन्तु ज्योंही राग-द्वेष रुपी कंकड उसमें गिरता है, आत्मा के अध्यवसाय में आन्दोलन पैदा हो जाते है और आत्मा अपने समाधि भाव से चलित हो जाती है ।

आत्मा की पूर्णता तो मोक्ष में है । जहाँ आत्मा अपने पूर्ण स्वरुप को प्राप्त कर सदा आत्मिक आनंद में लीन बनी रहती है । वहाँ न राग है, न द्वेष है, न अनुकूलता है, न प्रतिकूलता है, न शत्रु है, न मित्र है, न हर्ष है, न शोक है । सभी प्रकार के द्वन्द्व से मुक्ति है । ऐसी मुक्ति और समाधि हमारा लक्ष्य है । **संसार में रहते हुए भी यदि राग-द्वेष के निमित्त मिलने पर हम उससे विचलित हुए बिना रहे तो यहाँ इस संसार में रहते हुए भी मोक्ष के सुख का आस्वाद अवश्य कर ही सकते है ।**

तत्त्वार्थाधिगम और प्रशमरति जैसे 500 ग्रंथों की रचना करनेवाले वाचकवर्य श्री उमास्वातिजी महाराजा **प्रशमरति** ग्रंथ में कहते है–

स्वर्गसुखानि परोक्षाण्यत्यन्तपरोक्षमेव मोक्ष सुखम् ।
प्रत्यक्षं प्रशमसुखं, न परवशं न व्ययप्राप्तम् ।।237।।

निर्जित मदमदनानां, वाक्कायमनोविकाररहितानाम् ।
विनिवृत्तपराशानामिहैव मोक्षः सुविहितानाम् ।।238।।

अर्थात्–स्वर्ग के दिव्य सुख तो परोक्ष है और मोक्ष का सुख भी अत्यंत परोक्ष है । प्रशम सुख प्रत्यक्ष है, न तो वह परवश है न ही नाशवंत है ।

जिन्होंने मान और काम को जीत लिया है, जो मन-वचन-काया के विकारों से मुक्त है, जो पर पदार्थों की आशाओं से निवृत्त हो चुके है, ऐसे शास्त्रानुसार जीवन जीने वाले सुविहित मुनियों के लिए यहीं पर मोक्ष है ।

धर्म के मर्म और संसार के भ्रम को जानने के बाद कौन व्यक्ति समाधि सुख के रसास्वाद को पाना नहीं चाहेगा ? परंतु इसकी प्राप्ति आसान नहीं है ।

शीघ्रघाति जलचर प्राणियों से भरे समुद्र को दोनों भुजाओं के बल से तैरना मुश्किल है, परंतु कोई शुरवीर इस मुश्किल कार्य को आसान बना दे तो भी समाधि सुख की प्राप्ति और स्थिरता पाना आसान नहीं है ।

समाधि भाव की प्राप्ति सामायिक धर्म से है । सामायिक का अर्थ बताते हुए याकिनी महत्तरासुनू **श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी म.सा.** ने अष्टक प्रकरण में कहा है–

सामायिकं च मोक्षांगं परं सर्वज्ञभाषितं ।
वासीचन्दनकल्पाना-मुक्तमेतन्महात्मनाम् ।।

अर्थात्– सामायिक को सर्वज्ञ परमात्मा ने मोक्ष का अंग बताया है । यह सामायिक वासीचन्दन कल्पवाले महात्माओं को कही गई है ।

वासीचन्दन कल्प अर्थात्–शरीर के एक भाग में कोई वसूले से छेद करे और दूसरे भाग में कोई चन्दन का विलेपन करे, इन दोनों परिस्थितियों में न किसी पर राग करना और न किसी पर द्वेष करना ।

इतनी उच्च कक्षा की समता पाने के लिए तो दिल्ली बहुत दूर है, परंतु दिल्ली दूर है, कहकर हम अपनी समाधि साधना से डर जाए तो अपना लक्ष्य सिद्ध नहीं हो सकता है । करोड रुपयों की आशा वाले को भी शुरुवात तो पाई-पाई से ही करनी पडती है ।

उसी प्रकार समाधि भाव की पराकाष्ठा पाने के लिए छोटी-छोटी बातों में समताभाव पाने के लिए प्रयत्नशील तो हमें बनना ही पडेगा ।

ग्रंथकारथी इस श्लोक के द्वारा हमें समाधिभाव की प्राप्ति में जो आपत्तियाँ है, उन सब का निर्देश कर रहे है–

1) तत्त्वज्ञान का अभाव–समाधिभाव का भंग राग-द्वेष के कारण होता है और राग-द्वेष का मुख्य कारण तत्त्वज्ञान का अभाव है । तत्त्वज्ञान यानी वास्तविक ज्ञान । जो जैसा है उसे वैसा जानना और मानना ।

इस पूरे विश्व में मुख्य रुप से दो ही तत्त्व है–जीवतत्त्व और जडतत्त्व । जीव और जड दोनों का स्वभाव भिन्न है । दोनों एक दूसरे से विपरीत है । जीव कभी जड नहीं बनता और जड कभी जीव नहीं बनता । जीव ओर जड का जो भी सम्बन्ध है वह सदा रहने वाला नहीं । एक न एक दिन जीव और जड के सम्बन्ध का अवश्य अंत होता है ।

जीव और जड के भिन्न-भिन्न स्वभाव होने से जीव के प्रति मैत्रीभाव और जड के प्रति विरक्ति का भाव होना चाहिए ।

व्यक्ति जब तक इस जीव और जड के तत्त्वज्ञान से अज्ञात है तब तक वह जड से संबंध जोड़कर उसी में आसक्त रहता है । आसक्त व्यक्ति जड़ पदार्थ की आसक्ति के कारण कभी शांत नहीं रह सकता है ।

2) संकल्प, चिन्ता, विषय आदि की आकुलता–संकल्प अर्थात् मन में होनेवाले राग-द्वेष के अध्यवसाय । चिन्ता अर्थात् इच्छित कार्य के न होने और अनिच्छित कार्य के होने पर उसके विषय में अयोग्य विचार करना, विषय अर्थात् पांच इन्द्रिय के अनुकुल और प्रतिकूल पदार्थ, इनसे होनेवाली आकुलता हमें समाधि भाव पाने नहीं देती है । मन में जब जड पदार्थों के प्रति आसक्ति का भाव रहता है तब, जब तक वह पदार्थ प्राप्त न हो अथवा प्राप्त होने के बाद वह पदार्थ हमसे दूर न हो इस प्रकार के संकल्प विकल्पों का जाल मन में हमेशा चलता रहता है । ये संकल्प-विकल्प आर्तध्यान स्वरुप है, जो हमें कभी शांत चित्त होने नहीं देते है ।

3) संसार के दुःख की पीडा–संसार में चारों ओर आधि-व्याधि और उपाधि की भरमार है । (मानसिक पीडा=आधि, शारीरिक पीडा=व्याधि और बाहर से आनेवाली पीडाएं=उपाधि) क्षणिक सुख को पाने की इच्छा और आशा में संसारी जीव भयंकर पीडाएँ सहता रहता है । इस पीडा के कारण जीवन में शांति और समाधि की प्राप्ति असंभव हो जाती है ।

आत्म स्वभाव में रमणता प्राप्त करने में बाधक तत्त्वज्ञान का अभाव, संकल्प चिन्ता और सांसारिक दुःख की पीडा को समझाता अंतिम केवली श्री जंबुस्वामीजी द्वारा प्रभव चोर को बताया गया मधुबिन्दु का दृष्टांत–

मधुबिंदु

सूर्यपुर नाम का एक विशाल नगर था, जहाँ प्रेमदत्त नाम का धनाढ्य श्रेष्ठी रहता था । श्रेष्ठी के प्रियदत्त और महादत्त नाम के दो पुत्र थें । नवयौवन को प्राप्त दोनों भाइयों को धन कमाने की इच्छा हुई । पिता के आग्रह से महादत्त ने सूर्यपुर नगर में अपना व्यापार प्रारम्भ किया, परन्तु प्रियदत्त पिता की आज्ञा का उल्लंघन करके भी धनार्जन के लिए विदेश जाने के लिए तैयार हो गया । पिता ने अनिच्छा से प्रियदत्त को सम्मति दी । एक दिन वह धन-सामग्री लेकर अपने नगर से निकल पड़ा ।

नगर की सीमा पार करने के बाद आगे बढ़ता हुआ वह एक भयानक जंगल में आ पहुँचा । आगे चलते-चलते उसे दो लुटेरे मिले । उन लुटेरों ने उसको लूट लिया । वन के फलों का आहार करता हुआ धीरे-धीरे वह आगे बढ़ा । वन-मार्ग अत्यंत भयानक था, चारों ओर जंगली पशुओं की भयानक गर्जनाएं सुनाई देती थी ।

अचानक ही एक हाथी ने प्रियदत्त को जाते हुए देखा । प्रियदत्त को देखते ही वह हाथी उसकी ओर भागा । हाथी की भयंकर व रौद्र चिंघाड़ सुनकर प्रियदत्त घबरा गया । वह भी अपने प्राण बचाने के लिए वेग से भागा । इस भयंकर आपत्ति में उसे कोई शरण देने वाला नहीं था ।

आखिर उसे कुछ ही दूरी पर वट-वृक्ष दिखाई दिया । वह उस ओर भागा । वट-वृक्ष के नीचे एक कुआं था, कुएं की दीवार पर पैर रखकर उसने एक डाली पकड़ ली और दोनों हाथों से लटकने लगा । इधर हाथी भी दौड़ता हुआ वट-वृक्ष के पास आ पहुँचा, बीच में कुआँ होने से हाथी प्रियदत्त को पकड़ न सका । शिकार न मिलने से हाथी वट-वृक्ष को जड़ से ही उखाड़ने का प्रयत्न करने लगा ।

उस कुएँ में चार सर्प और एक अजगर था, जो तीव्र फूत्कार कर प्रियदत्त को डँसने के लिए सजग थे । वृक्ष के ऊपर मधु-मक्खियों का छत्ता था । हाथी जब वृक्ष को हिलाता, तब छत्ते की मक्खियाँ उड़कर प्रियदत्त को डंक देती थीं । जिन दो डालियों के आधार पर प्रियदत्त लटका हुआ था, उन दो शाखाओं पर सफेद व श्याम रंग के दो चूहे थे, जो उन डालियों को काट रहे थे ।

वृक्ष के हिलने पर मक्खियाँ उड़ती थीं, उस शहद के छत्ते में से नीचे गिरती हुई दो-चार शहद की बूंदें प्रियदत्त के मुख में गिर पड़ीं । उसे बड़ा आनंद आया । कुछ समय बाद एक देव, विमान में बैठकर उस मार्ग से निकला, प्रियदत्त की इस दुर्दशा देखकर देव को दया आ गई ।

देव ने कहा, **''हे प्रियदत्त ! चल, मैं तुझे अपने स्थान पर पहुँचा देता हूँ !''**

प्रियदत्त ने कहा-**''तुम्हारी बात सच है, मगर अभी-अभी मैंने शहद की दो-चार बूंदे चखी है, शहद बहुत ही मधुर है, अतः दो-चार बूंदें मुझे और चखने दो, उसके बाद मैं आऊंगा ।''**

प्रियदत्त की बात सुनकर देव वहाँ से चला गया । कुछ ही दिनों बाद देव पुनः आकर बोला, परन्तु प्रियदत्त ने पुनः वही जवाब दिया । देव समझ गया कि यह बेचारा मधु में लुब्ध हो गया है, अतः नहीं समझ सकता है । पुनः देव वहाँ से चल पड़ा । अंत में डालियों के कटने से प्रियदत्त कुएं में जा गिरा !

कथा का उपनय : इस दृष्टांत में **प्रियदत्त** संसारी जीव है । **भयंकर वन,** संसार है । **हाथी,** मृत्यु है । **कुआँ** दुर्गति का प्रतीक है । कुएँ में चार सर्प और अजगर काम-क्रोध-मद-लोभ और मोह के द्योतक हैं । सफेद व श्याम रंग के चूहें दिन व रात अथवा शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष के प्रतीक हैं ।

मक्खियों का छत्ता विषयों का प्रतीक है । मक्खियों के उड़ने से जो शहद की बूंदें गिरती हैं-वे संसार के सुख की प्रतीक हैं और मक्खियों के दंश आधि-व्याधि और उपाधि के प्रतीक हैं । दोनों शाखाएँ आयुष्य की प्रतीक हैं, जिसे दिन व रात रूपी चूहें काट रहे हैं ।

विमान में बैठा देव सद्गुरु का प्रतीक है और देव का वचन धर्मोपदेश का प्रतीक है । देव को प्रियदत्त का प्रत्युत्तर यह संसारी जीव की मूर्च्छा का प्रतीक है ।

स्पष्ट है कि क्षणिक व अल्प सुख में लुब्ध बना संसारी जीव अपने भावी का विचार नहीं करता है और विषयों में लुब्धता के कारण मरकर दुर्गति प्राप्त करता है ।

वास्तव में संसारी जीवों की यही स्थिति है । उन्हें आत्मा की बातें भ्रम रूप लगती हैं । तत्त्वज्ञान के अभाव में वास्तविक सत्य को वे पहिचान नहीं पाते हैं । आत्मा का सुख शाश्वत, निरपेक्ष और अनंत है, जिसकी प्राप्ति के लिए आत्मा की स्वभाव दशा को प्राप्त करना पड़ता है । आत्म-स्वभाव में रमणता के लिए सर्व प्रथम आत्मा में रहे दुर्गुणों को मूल से उखाड़ना चाहिए और गुण-प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिए ।

सार ग्रहण- करो ।

श्लोको वरं परमतत्त्व-पथ-प्रकाशी,
न ग्रन्थकोटिपठनं जनरञ्जनाय ।
सञ्जीवनीति वरमौषधमेकमेव,
व्यर्थश्रमप्रजननो न तु मूलभारः ।।32।। (वसन्ततिलका)

शब्दार्थ

श्लोको=एक गाथा,
वरं=श्रेष्ठ है,
परमतत्त्वपथप्रकाशी=मोक्ष मार्ग को बतानेवाली,
न=नहीं है,
ग्रन्थकोटिपठनं=करोडों ग्रन्थों का पठन,
जनरञ्जनाय=लोगों को खुश करने के लिए,
सञ्जीवनी=सर्व रोग नाशक और जीवन प्रदायी औषधि विशेष,
इति=इस प्रकार,
वरं=श्रेष्ठ है,
औषध=रसायण विशेष,
एकं=अद्वितीय,
एव=ही,
व्यर्थश्रमप्रजनन=निरर्थक थकाने वाला प्रयत्न,
तु=वितर्क अर्थ में,
मूलभार=औषधियों की जडों का भार ।

गाथार्थ

सर्व रोग नाशक और दीर्घ जीवन प्रदायी एक मात्र संञ्जीवनी औषधि की प्राप्ति करना अच्छा है परंतु सभी औषधियों के जडों का भार पाने के लिए निरर्थक श्रम करना, अच्छा नहीं है । इसी प्रकार मोक्ष मार्ग को बताने वाली एक गाथा का पठन-चिन्तन और मनन करना अच्छा है परंतु मात्र दुनिया को खुश करने के लिए करोडों ग्रंथों का शुष्क-पठन अच्छा नहीं है ।

विवेचन

खडी शक्कर का टुकडा और संगमरमर का छोटा टुकडा-दोनों बाहर से तो एक समान ही दिखते है परंतु दोनों के स्वरुप में फर्क है । इनकी परीक्षा तो पानी में डालने से होती है । पानी में डालने के बाद शक्कर का टुकडा पानी में घुलमिल जाता है और पानी को मीठा बना देता है, जबकि संगमरमर का छोटा टुकडा पानी में जाने के बाद हमेशा वैसा ही रहता है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं होता । **बाहर निकालने के बाद वह पत्थर के टुकडे को सुखे कपड़े से पोछने पर वैसा ही रहता है ।**

ग्रंथकारश्री इस श्लोक में मात्र ज्ञानाभ्यास पर भार न देते हुए उसके पिछे, लक्ष्य की शुद्धि का महत्त्व समझा रहे है । वे कह रहे है कि दुनिया को खुश करने के लिए, अपनी विद्वत्ता बताने के लिए अथवा यश कीर्ति के लिए कोई व्यक्ति करोडों श्लोकों का अभ्यास कर ले तो भी वह उसका ज्ञानाभ्यास पानी में पडे पत्थर के टुकडे के समान विशेष लाभदायी नहीं है । **उसकी आत्मा को ऐसे ज्ञानाभ्यास से कोई फायदा नहीं होता । ऐसा ज्ञानाभ्यास तो मात्र भारढोने वाला ही होता है । जैसे गधे की पीठ पर चन्दन की लकडी का भार, मात्र भार स्वरुप ही रहता है । गधे को उसकी सुगंध या शीतलता का कोई लाभ नहीं होता है ।**

लोक रंजन के लिए किया गया ज्ञानाभ्यास आत्महितकर नहीं है, अतः ज्ञानाभ्यास करते समय लोकरंजन के भाव का त्याग कर उसे आत्महितकारी बनाने का प्रयत्न जरुरी है । आत्मा के भीतर मोक्ष सुख के प्रति संवेग भाव एवं संसार सुख के प्रति निर्वेद भाव पैदा करे ऐसे हजारों ग्रंथ नहीं, हजारों श्लोक नहीं बल्कि मात्र एक श्लोक का पठन, उसका चिंतन-मनन और उसकी अनुप्रेक्षा करना ज्यादा अच्छा है ।

वह एक श्लोक का पठन साधक आत्मा के लिए पानी में डाले गए खडी शक्कर के टुकडे की तरह होता है, जो उसमें घुलमिलकर मधुर स्वाद और ठंडक प्रदान करता है ।

Economics का भी सूत्र है सर्वश्रेष्ठ व्यापार वही है, जिसमें Minimum Efforts and Maximum Profit हो । ट्रक भरकर रेती-पत्थर के व्यापार से भी ज्यादा मुनाफा एक छोटे से रत्न के व्यापार से हो जाता है । इसमें Quantity से भी Quality की कीमत देखी जाती है । सिर्फ Quantity हो परंतु Quality अच्छी न हो, नकली हो तो उसकी कोई कीमत नहीं होती है ।

वर्तमान में जो पृथ्वी हमारे लिए दृष्टिगोचर है, उसमें प्राय 70% क्षेत्र में चार महासमुद्र है, शेष धरती है । धरती पर भी कई खाडियाँ, नदी-नाले ऐसे है जिसमें भरा हुआ पानी पीने लायक नहीं है । पीने लायक मीठा पानी का प्रमाण समुद्र के पानी की अपेक्षा कम है । इसीलिए दुनिया में भी कहावत है **खारा जल से दरियों म्होटो, मीठा जल रो लोटो ।** इसी तरह लोक रंजन के लिए पढे गए करोडों ग्रंथों की अपेक्षा आत्मा के लिए एकांत हितकारी एक श्लोक भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण है ।

वैसे तो सभी शास्त्र श्रुतज्ञान स्वरुप है, फिर भी श्रमण सूत्र में 29 प्रकार के शास्त्रों को पापश्रुत के रुप में कहा गया है । 29 पापश्रुत–

1) भौम शास्त्र– जिन शास्त्रों में भूमिकम्प, भूगर्भ में खनिज पदार्थ, भूमि में पानी का प्रमाण आदि विषय को जानने का निर्देश किया गया हो वे भौम शास्त्र कहलाते हैं ।

2) उत्पात शास्त्र– जिन शास्त्रों में आकाश में से रुधिरवृष्टि, दिग्दाह इत्यादि विषयों का निर्देश किया गया हो वे उत्पात शास्त्र कहलाते हैं ।

3) स्वप्न शास्त्र– जिन शास्त्रों में व्यक्ति को अर्धजागृत अवस्था में आने वाले स्वप्न के अच्छे-बूरे फल, किस समय में आये हुए स्वप्न का कैसा और कितने काल में फल प्राप्त होता है उस विषय का निर्देश किया गया हो वे स्वप्न शास्त्र कहलाते हैं ।

4) अन्तरिक्ष शास्त्र–जिन शास्त्रों में अन्तरिक्ष में रहे चर-अचर ग्रह-नक्षत्र आदि की गति, उसके अनुसार राशि फल में परिवर्तन आदि के विषय में निर्देश किया गया हो वे अन्तरिक्ष शास्त्र कहलाते हैं ।

5) अंग शास्त्र–जिन शास्त्रों में शरीर के विविध अंगों में स्फुरण और कंपन से होने वाले शुभाशुभ फल के विषय में निर्देश किया हो वे अंग शास्त्र कहलाते हैं ।

6) स्वर शास्त्र– जिन शास्त्रों में पशु-पक्षियों और मनुष्य के विविध स्वरों के विषय में निर्देश हो, वे स्वरशास्त्र कहलाते हैं ।

7) व्यंजन शास्त्र– जिन शास्त्रों में शरीर पर रहे तिल, मसा आदि चिह्नों के शुभाशुभ फल के विषय में निर्देश किया हो वे व्यंजनशास्त्र कहलाते हैं ।

8) लक्षण शास्त्र– जिन शास्त्रों में विविध वस्तुओं में रहे शुभाशुभ लक्षण के विषय में निर्देश हो, वे लक्षण शास्त्र कहलाते हैं ।

9 से 24) इन आठ शास्त्रों के **मूल सूत्र, वृत्ति और वार्तिक** के भेद से 24 शास्त्र हो जाते हैं ।

25) विकथानुयोग– आत्महित के विरुद्ध कथाओं को विकथा कहते है । इसके चार प्रकार है–

i) स्त्रीकथा– स्त्रियों के रुप, लावण्य, हास्य, सौंदर्य, वस्त्र, आभूषण आदि विकार पैदा करने वाली चर्चा को स्त्रीकथा कहते हैं ।

ii) भक्तकथा– भोजन के छह रस, खाने-पीने की वस्तुओं के विषय में चर्चा को भक्तकथा कहते हैं ।

iii) देशकथा– देश-विदेश के विविध रीति-रिवाज, सभ्यता, वेशभूषा, भोजन आदि के विषय में चर्चा को देशकथा कहते हैं ।

iv) राजकथा– देश के राजा, प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति, शासक वर्ग

की सेना, अंत:पुर परिवार, युद्धकल, भोग-विलास आदि संबंधी चर्चा को राजकथा कहते हैं ।

इन चार विकथाओं का वर्णन जिन शास्त्र में किया गया हो वे विकथानुयोग शास्त्र कहलाते हैं ।

26) विद्यानुयोग– जिन शास्त्रों में रोहिणी आदि 16 विद्याओं की सिद्धि हेतु विधि-विधान के प्रयोगों का निर्देश किया हो वे विद्यानुयोग शास्त्र कहलाते हैं ।

27) मंत्रानुयोग– जिन शास्त्रों में धन प्राप्ति, वशीकरण, रोगनिवारक आदि विविध प्रकार के मंत्रों का निर्देश किया हो वे मंत्रानुयोग शास्त्र कहलाते हैं ।

28) योगानुयोग–जिन शास्त्रों में हठ योग आदि योग अथवा अष्टांग योग आदि का निर्देश किया हो वे योगानुयोग शास्त्र कहलाते हैं ।

29) अन्यतीर्थिकानुयोग– जिन शास्त्रों में अन्य तीर्थिक के हिंसा प्रधान आचार, उनकी मान्यताओं में बताए चमत्कारादि का निर्देश किया हो वे अन्यतीर्थिकानुयोग शास्त्र कहलाते हैं ।

इन सारे शास्त्रों का पठन मुख्य रुप से पापकारी प्रवृत्ति बढाते हुए साधक को मोक्षमार्ग से भटकाने वाला होता है । इसलिए ग्रंथकारश्री इन सभी को वनस्पति के मूल भार को इकट्ठे करने के समान परिश्रम जन्य बताते है ।

मोक्षलक्षी जिनागम शास्त्र रूपी संञीवनी औषधि प्राप्त हो गई हो तब निरर्थक पाप को बढानेवाले इन पापश्रुत का कोई अर्थ नहीं है । प्राप्त हुआ मनुष्य आयुष्य खुब थोडा है । उसमें अपना क्षयोपशम और भी कम है । अत: यदि व्यर्थ के इन पापश्रुत के पठन में जीवन का महत्त्वपूर्ण काल व्यर्थ चला गया तो आत्मसाधना के लिए समय कहाँ मिलेगा ?

जिनागम का एक-एक श्लोक खूब रहस्यों से भरा है । भूतकाल में

ऐसे कई प्रसंग बने है जिनमें मात्र एक श्लोक अथवा अल्प उपदेश से उन्मार्ग में गई हुई आत्माएँ पुनः सन्मार्ग में स्थिर होकर आत्मसाधना की ऊँची भूमिका तक पहुँची है ।

◆ 1444 ग्रंथ के रचयिता **पू.आ.श्री हरिभद्रसूरीश्वरजी** गृहस्थ जीवन में राजपुरोहित थे । उन्हें अपने ज्ञानाभ्यास का खुब अभिमान था । साथ ही जैनधर्म पर कट्टर द्वेष था । हाथी के पैर के नीचे कुचलाकर मर जाना कबूल है परंतु प्राण बचाने के लिए भी जैन मंदिर में नहीं जाना, ऐसी प्रतिज्ञा होने पर भी **''जो बात मैं नहीं जानता हूँ, वह कोई मुझे सीखा दे तो मैं उसका शिष्य बन जाऊं''** इस प्रतिज्ञा के कारण उनके जीवन में एक बडा मोड आ गया ।

याकिनी महत्तरा साध्वीजी जिनागम की गाथा का पुनरावर्तन कर रही थी, तब वे शब्द उन्हें समझ में नहीं आये । जिज्ञासा वृत्ति से जब पूछने गए तब साध्वीजी ने आचार्य भगवंत के पास भेजा । आचार्य भगवंत ने उस गाथा के अर्थ को समझने के लिए दीक्षा स्वीकार करने का निर्देश किया । एक समय के कट्टर द्वेषी ने मात्र एक श्लोक का अर्थ समझने के लिए दीक्षा स्वीकार की और आगे चलकर जैन धर्म के धुरंधर आचार्य बने ।

◆ उपमिति भव प्रपंच कथा के रचयिता **सिद्धर्षि गणी**–गृहस्थ अवस्था जुएं के व्यसनी थे, रात को देरी से घर आने पर माता ने कहा, **'जहाँ दरवाजा खुला हो, वहाँ चला जा ।'** इस वचन से उन्हें सद्गुरु का योग हुआ और दीक्षा प्राप्त हुई ।

आगे चलकर जब बौद्ध दर्शन का अभ्यास करने के बाद उनका मन बौद्ध दर्शन स्वीकार करने के लिए तैयार हो गया था तब गुरुदेव की पाट पर पडे **ललितविस्तरा** ग्रंथ के कुछ पन्ने पढकर वे पुनः सद्धर्म में स्थिर बन गए । 21 बार जाने-आने पर गुरु मुख के उपदेश से जो बात न समझ सके, वह बात कुछ श्लोक के पठन से समझ गए ।

निकट मोक्षगामी आत्माएँ ऐसी होती है जो अल्प शब्दों में दिये उपदेश का सार ग्रहण कर आत्मकल्याण के मार्ग में आगे बढ जाती है । परंतु जो अभव्य है अथवा दूर्भव्य है, जिनको दीर्घ काल तक संसार में परिभ्रमण करना है वे जिनागमों को पाकर भी अपने संसार की वृद्धि ही करते हैं ।

अभव्य आत्माएँ नौ पूर्व तक विशाल ज्ञान प्राप्त कर सकती है, परंतु मोक्ष के विषय में अश्रद्धा के कारण कठोर संयम पालन करने पर भी उनका मोक्ष नहीं हो सकता हैं । दुर्भव्य आत्माएँ अथवा जो मोह गर्भित वैराग्य वाले होते है वे शास्त्राभ्यास तो खुब करते है परंतु आत्महितकारी ज्ञान से वंचित रह जाते है ।

अब निर्णय हमें करना है कि हमें सञ्जीवनी औषध स्वरुप आत्महितकारी श्लोकों का आश्रय लेना है या वनस्पतियों के मूल भार को वहन करने स्वरूप लोकरंजनकारी करोडो श्लोकों का आश्रय करना है ।

स्वस्थ मन की सर्वोच्च शक्ति

तावत् सुखेच्छा विषयादि भोगे,
यावन्मनः स्वास्थ्य सुखं न वेत्ति ।
लब्धे मनः स्वास्थ्य-सुखैकलेशे,
त्रैलोक्यराज्येऽपि न तस्य वाञ्छा ।।33।। (इन्द्रवज्रा)

शब्दार्थ

तावत्=तभी तक,
सुखेच्छा=सुख की इच्छा,
विषयादिभोगे=पांच इन्द्रियों के अनुकूल विषय भोग में,
यावत्=जब तक,
मनः=चित्त,
स्वास्थ्यसुख=स्वस्थता का सुख,
न=नहीं,
वेत्ति=जानता है,
लब्धे=प्राप्त होने पर,
मनःस्वास्थ्य सुखैकलेशे=चित्त की स्वस्थता के सुख का एक अंश,
त्रैलोक्यराज्येऽपि=तीन लोक के राज्य को पाने की भी,
न=नहीं रहती है,
तस्य=उसको,
वाञ्छा=इच्छा ।

गाथार्थ

संसारी जीव को तभी तक पांच इन्द्रियों के विषय भोग की इच्छा रहती है, जब तक वह मानसिक स्वस्थता के सुख को नहीं जानता है । यदि एकबार उसे मानसिक स्वस्थता के सुख का एक अंश भी प्राप्त हो जाय, तो तीन भुवन के साम्राज्य से प्राप्त होने वाले सुख की भी इच्छा नहीं रहती है ।

विवेचन

एक म्यान में दो तलवारें नहीं रह सकती, एक गुफा में दो केशरी सिंह नहीं रह सकते हैं, वैसे ही एक मन में संसार के क्षणिक वैषयिक सुख का आकर्षण और मोक्ष के शाश्वत आत्मिक सुख का आकर्षण-दोनों नहीं रह सकते है । दोनों की दिशाएँ विपरीत है । वैषयिक सुख की प्राप्ति मन की चंचलता से होती है जबकि मोक्ष के सुख की प्राप्ति मन की स्वस्थता से होती है । मन की स्वस्थता का प्रभाव बताते हुए ग्रंथकारश्री कह रहे है कि,

''संसारी जीव को तभी तक पांच इन्द्रियों के विषय भोगों के प्रति आकर्षण रहता है, जब तक वह मानसिक स्वस्थता का सुख नहीं जानता है । एक बार मानसिक स्वस्थता के सुख का अंश प्राप्त हो जाय तो उसे सामने से प्राप्त होने वाले तीनलोक के साम्राज्य के सुख की भी इच्छा नहीं रहती तो फिर तुच्छ विषय सुखों की इच्छा की तो क्या बात करें ?''

जीवन में समस्त सुखों का कारण गुण है और समस्त दुःखों का कारण दोष है ।

सारे दोष मन के है और सारे गुण आत्मा के है । जब मन चंचल बनता है तब उसमें सारे दोष पैदा होते है और जब मन स्वस्थ बनता है अर्थात् स्व में स्थिर बनता है, चंचलता-मलिनता आदि दोषों से रहित समाधिस्थ बनता है तब वह आत्मिक भाव को पाकर सभी सद्गुणों का स्वामी बनता है और जीव शाश्वत सुख का भोक्ता बनता है । अतः सुख और दुःख का मूल तथा बंधन और मुक्ति का मूल मन ही है । कहा जाता है-**''मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।** अर्थात्-मन ही मनुष्य के भवबंधन और भवमुक्ति का कारण है ।

संसारी जीवों के मन भिन्न भिन्न स्वभाव के है । विभिन्न प्रकार के स्वभाव के अनुसार मन के पांच भेद इस प्रकार है –

1) कठोर मन 2) संवेदनहीन मन 3) संवेदनशील मन 4) परोपकारी मन 5) स्वस्थ मन

1) कठोर मन :– जिस मन में मात्र अपने भौतिक सुख का विचार रहता हो, अन्य के सुख-दु:ख की कोई चिन्ता नहीं हो बल्कि अन्य को दु:खी देखने पर खुशी होती हो ।

दूसरों को दु:ख देने में, दूसरों को हैरान-परेशान करने में जिसे आनंद आता हो उस मन को **कठोर मन** जानना चाहिए । अपने क्षणिक और अति अल्प सुख के लिए किसी को दु:ख देने में कठोर मनवाले व्यक्ति को कोई दु:ख का एहसास नहीं होता है । प्रहार करने पर पत्थर तो टूट जाता है, परंतु कठोर मन वाला व्यक्ति तो पत्थर से भी ज्यादा कठोर होता है । उसके केन्द्र में मात्र अपना ही सुख होता है । अपने सुख प्राप्ति के मनोरथ को पूर्ण करने के लिए वह किसी की परवाह नहीं करता ।

इन्द्रियजन्य सुखों को पाने के लिए वह हल्के से हल्का कार्य करने के लिए तैयार हो जाता है । अपने सुख के लिए व्यक्ति संपत्ति और सत्ता को पाना चाहता है । उस चाहत को पूरी करने में बीच में आने वाले किसी को भी वह पसंद नहीं करता है । चाहे भाई हो, पिता हो, पत्नी हो या पुत्र हो अपने स्वार्थ के बीच में आने वाले किसी की हत्या करने अथवा करवाने में उसे तनिक भी संकोच या अफसोस नहीं होता है । कठोर मन वाला जीव प्राय: करके हमेशा रौद्रध्यान में लीन रहता है । मन की कठोरता के कारण ऐसा जीव मरकर नरक गति का महेमान बनता है ।

कठोर मन वाले व्यक्ति में किसी के प्रति दया का भाव नहीं होता । दया और दान के साथ उसे कोई सम्बन्ध नहीं होता । कदाचित् कभी किसी को कोई दान आदि करे तो भी उसमें अपने फायदे को ढुंढने का ही उद्देश्य रहता है । दान के पीछे भी व्यापार का ही लक्ष्य रहता है ।

देव-गुरु और धर्म के साथ स्नान-सुतक का भी संबन्ध नहीं होता । उसे सर्वत्र मात्र अपने सुख और सुख के साधन स्वरुप पैसे, यशकीर्ति और प्रशंसा ही प्रिय लगती है । कभी मंदिर तो कभी मस्जिद, प्रशंसा की भूख मिटाने के लिए वह सर्वत्र भटकता रहता है । फिर भी धर्म का अंश भी उसके मन को स्पर्श नहीं करता है । बडे-बडे उद्योग खडे कर उसमें अपार जीवहिंसा करता हुआ वह निरंतर पापों का ही बंध करता है ।

2) संवेदनहीन मन :– जिस मन में सुख को पाने की चाह तो है परंतु उसे पाने के लिए अन्य के दुःख का लेश भी विचार नहीं होता उस मन को संवेदन हीन मन कहते है । कठोर मन वाला जीव अपने सुख को पाने के लिए किसी की हिंसा करने के लिए तैयार होता है, जबकि संवेदनहीन मन वाले व्यक्ति में उतनी कठोरता नहीं होती कि वह किसी की हिंसा करे या करवाये, परंतु सुख के साधनों को पाने में होने वाली हिंसा के प्रति मन में कोई दुःख-दर्द या संवेदना भी नहीं होती है । जैसे गाडी चलाते हुए कोई जानवर आदि मर गया तो वह उसमें अपनी गल्ती नहीं मानता । **''इसमें मेरी क्या गल्ती, यदि आँखें मूंदकर कोई चलेगा तो मरेगा ही न ! मेरा क्या कसुर ?''** ऐसा कहकर छूटने की कोशिश करता है । कदाचित् लोगों के सामने अपनी बदनामी होते देख पैसे देकर छूट जाएगा, परंतु अपनी गल्ती का स्वीकार तो कदापि नहीं करेगा । वह यही मानता है कि **'गल्ती करे वे दूसरे, मैं कभी गल्ती नहीं करता ।'** स्वर्ग, नरक, परलोक, आत्मा आदि को नहीं मानता हुआ मात्र इस जीवन के सुख को पाने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है । **स्वयं हिंसा से होने वाले व्यापारों से बचकर झूठ, चोरी आदि में सहायक बनने वाले White collar व्यापार से पैसे कमाता है ।** राजनेता या वकील बनकर संवेदनहीन मन वाला व्यक्ति परंपरा से हिंसा आदि कार्य में जुडता है और अपने सुख के साधनों का संग्रह करते हुए हमेशा आर्तध्यान में लीन होकर प्रायः करके तिर्यंच गति में जाता है ।

3) संवेदनशील मन :– जिस मन में भौतिक सुख का आकर्षण

होता है, सुख पाने के लिए प्रयत्न भी पूरा हो परंतु उस सुख की प्राप्ति में जहाँ भी हिंसा का पापाचरण होता हो, उसे स्वीकार करने के लिए तैयार न हो वह मन, संवेदनशील मन होता है ।

एक ओर अपने सुख के साधन की प्राप्ति के साथ जीवहिंसा होती हो तो दूसरी ओर जीवहिंसा से बचने के लिए सुख के साधन का त्याग करना पडता हो तो संवेदनशील मन वाला व्यक्ति अपने सुख के साधन का त्याग कर देता है परंतु जीवहिंसा के पाप में प्रवेश नहीं करता है । ऐसे जीवों को पूर्ण रुप से धर्म ही प्रिय हो, ऐसा तो नहीं है, परंतु धर्म की बातों पर विश्वास, आत्मा, परलोक, नरक-स्वर्ग पर श्रद्धा होती है ।

''बडे पाप व्यापारों के द्वारा आत्मा को नरकादि दुर्गति में खूब दुःख सहन करना पडता है'' ऐसे धर्मोपदेश पर श्रद्धा कर वह पापाचरण से डरता है । साथ ही भौतिक सुखों का आकर्षण तो होता है इसलिए न्याय-नीति पूर्वक पैसा कमाकर, उसे व्यापार, दान और भोग के कार्यों में निश्चित रुप से जोडकर विवेकपूर्ण आचरण करता है । विनय, विवेक, दया आदि सद्गुणों के आधार पर वह जीव प्रायः करके मनुष्य गति प्राप्त करता है ।

4) परोपकारी मन :– जिस मन में स्वयं के भौतिक सुख की अपेक्षा अन्य जीवों के सुख की चिन्ता अधिक हो वैसा मन, परोपकारी मन कहलाता है ।

धर्म के मर्म को समझने के बाद संसार में परिभ्रमण करते जीवों के दुःखों को देखकर उसका मन द्रवित हो उठता है । मात्र बाह्य दुःख नहीं बल्कि उसका बस चले तो वह सभी जीवों के भीतर रहे दोषों को दूर कर दे और सभी को शाश्वत सुखी बना देने की मनोकामना करता हैं ।

यदि वह संसार में रहो तो अपने पैसों के बल पर अन्य जीवों के बाह्य दुःखों को दूर करने के लिए सदा प्रयत्नशील रहता है ।

यदि वह संसार का त्यागी हो तो संसारवर्ती सभी जीवों के दुःख और दोषों को दूर करने की शुभ भावना के साथ विशिष्ट तप-साधना के माध्यम से तीर्थंकर नाम कर्म का बंध करता है । कदाचित् भावना या तप साधना इतनी विशिष्ट न हो तो गणधर, चक्रवर्ती, राजा आदि बनने के योग्य विशिष्ट पुण्य का उपार्जन करता है ।

सराग संयम की साधना और धर्मध्यान के बल पर ऐसी आत्मा देवलोक में जाकर अगले भव में विशिष्ट योग्यता धारक बनकर स्व-पर के आत्महित में लीन बनती है और परंपरा से मुक्ति सुख को प्राप्त करती है ।

5) स्वस्थ मन :– जिस मन में पांच इन्द्रियों के विषय भोगों के प्रति आकर्षण का सर्वथा अभाव हो और जो समाधि साधना में स्थिर हो वह मन, स्वस्थ मन है ।

पांच इन्द्रियों के विषय विष से भी भयंकर है ऐसा प्रतीत होने के बाद साधक आत्मा उससे विमुख बनकर आत्मिक सुख को पाने के लिए प्रयत्नशील बनती है ।

उसे राग-द्वेष की भयंकरता बडे रोगों से भी अधिक भयंकर लगती है, राग-द्वेष के द्वंद्व से मुक्त होकर समाधि भाव से आकर्षित होकर समाधि पाने का प्रयत्न करता हो । उसे स्वस्थ मन कहते है । वह हमेशा मोक्ष सुख को पाने के लिए निश्चल मन वाला होकर संसार का त्याग कर श्रमण धर्म की आराधना करता है ।

अनादिकाल की विषयतृष्णा जो जीवात्मा को पांच इन्द्रिय के सुखों को पाने लालायित करती थी, ऐसी विषय तृष्णा को चारित्र रुपी महाशस्त्र से चूर-चूर कर देता है ।

जो स्पर्शनेन्द्रिय कोमल गद्दी-तकिये और स्त्री के भोग सुखों से प्रसन्न बनती थी, उसका त्याग कर साधक कठोर भूमि और तृण से बने संथारे और आसन के तीखे स्पर्श में आनंद अनुभव करता है । आतापना लेकर आत्मा को प्रसन्न करती है ।

जो रसनेन्द्रिय छह विगई से भरपूर मीठे-मधुर पक्वान्न और तीखे-चटपटे व्यंजनों से पुष्ट होकर अन्य सभी इन्द्रियों को विकृत करती है, उसे साधक छह विगई से रहित भिक्षा वृत्ति से प्राप्त निर्दोष आहार से दंडित करता है । यथाशक्ति, उपवास आदि कठोर तपश्चर्या करके सभी इन्द्रियों पर विजय पाने के लिए बार-बार प्रयत्न करता है ।

जो घ्राणेन्द्रिय सुगंधी कपूर, चंदन, केशर, कस्तुरी आदि के विलेपन, इत्र, गुलाबजल, बाग-बगीचे के माहौल में रहकर खिल खिलाती थी, उसे साधक सभी प्रकार के सुगंधी द्रव्यों का त्याग कर शांत करता है । **शरीर पर विलेपन की बात तो दूर रहे, जीवन भर स्नान का त्याग कर शरीर पर पसीने और मैल जमने पर भी ब्रह्मचर्य का पालन करता है ।**

जो चक्षुरिन्द्रिय गीत-गान और वाद्ययंत्र के ताल पर नाचती हुई नर्तकी के नाच, नाटक, T.V. सिनेमा आदि को देखकर प्रमुदित होती थी उसे साधक आँखों से देखने की बात तो दूर रहो, मन में भी स्मरण की कामना नहीं करता है । प्रभु दर्शन, मार्ग में चलते हुए नीची नजर, जीवरक्षा, स्वाध्याय करने आदि के माध्यम से संयमित करती है । कदाचित् आँखों के सामने किसी स्त्री का दृश्य आ जाय तो मध्याह्न के सूर्य के सामने चली गई दृष्टि की तरह उसे तुरंत खींच लेता है ।

जो श्रोत्रेन्द्रिय बांसुरी, वीणा, ढोल और वाद्ययंत्र के तालबद्ध संगीत और गीतगान से खुश होती थी, उसे साधक जिनवाणी के श्रवण में तल्लीन करता है ।

प्राप्त हुई इन पांचों इन्द्रियों से आत्मविकास के पथ पर चलता हुआ साधक अपने मन को स्थिर कर क्षपक श्रेणी पर आरुढ होकर सिद्धि पद को प्राप्त करता है ।

आत्मा के अनंत साम्राज्य को प्रदान करता स्वस्थ मन यदि अल्प काल के लिए भी जीवात्मा को प्राप्त हो जाय, तो उसे संसार के अन्य किसी भी सुख को पाने की इच्छा या आकांक्षा नहीं रहेगी !

सच्चा सुखी कौन ?

न देव-राजस्य न चक्रवर्तिन-,
स्तद्वै सुखं रागयुतस्य मन्ये ।
यद्वीतरागस्य मुनेः सदात्म-
निष्ठस्य चित्ते स्थिरतां प्रयाति ।।34।। (उपजाति)

शब्दार्थ

न=नहीं है,
देवराजस्य=इन्द्र महाराजा को,
चक्रवर्तिनः=छह खंड के राजा को,
तद्=वह,
वै=वितर्क अर्थ में,
सुखं=आनंद,
रागयुतस्य=राग से जुडे हुए जीव को,
मन्ये=मैं मानता हूँ,
यद्=जो,
वीतरागस्य=जिसने राग-द्वेष पर विजय प्राप्त किया है ऐसे,
मुनेः=साधु भगवंत को,
सदात्मनिष्ठस्य=जो हमेशा आत्मभाव में लीन बने हुए है ऐसे,
चित्ते=मन में,
स्थिरतां=निश्चलभाव से,
प्रयाति=प्राप्त करता है ।

गाथार्थ

जो राग-द्वेष पर विजय प्राप्त कर चुके है, और सदा आत्मभाव में लीन है, ऐसे साधु भगवंत मन की स्थिरता द्वारा जो सुख प्राप्त करते है, वह सुख राग से जुडे हुए इन्द्र महाराजा को या चक्रवर्ती को भी प्राप्त नहीं होता है–ऐसा मैं मानता हूँ ।

विवेचन

जीवात्मा की सबसे प्रबल इच्छा है **'सुख पाने की'** । सभी जीवों के सभी प्रकार के प्रयत्न सुख पाने के लिए ही है । प्रयत्न चाहे किसी भी दिशा में किसी भी प्रकार क्यों न हो लक्ष्य सभी का एक ही है–सुख पाना और दु:ख को दूर करना । ऐसा होने पर भी संसार में किसी को सदा सुख मिलता नहीं है, और दु:ख दूर होता नहीं है कारण मात्र एक है–**'मोह की परवशता'** ।

इस मोह की परवशता को दूर करने के लिए ग्रंथकारश्री हमें सही दिशा बोध देते हुए कह रहे है कि **''जिस सुख की प्राप्ति राग-द्वेष रुपी शत्रुओं को जीतने पर मन की स्थिरता द्वारा आत्मभाव में लीन हुए साधु पुरुष को होती है, वह सुख' राग से जुडे हुए न तो इन्द्रों को प्राप्त होता है न ही चक्रवर्ती को ।''**

वैसे तो सुख का एक मात्र स्थान मोक्ष है, फिर भी भौतिक सुख दु:ख की अपेक्षा चार गति रुप इस संसार में नरक गति और तिर्यंच गति को दुर्गति कही है क्योंकि वहाँ दु:ख की बहुलता है, देव गति और मनुष्य गति को सद्गति कही जाती है क्योंकि वहाँ भौतिक सुख प्राप्ति की संभावना है ।

देव गति में सर्वोच्च सुखी इन्द्र माने जाते हैं और मनुष्य गति में सर्वोच्च सुखी चक्रवर्ती माने जाते हैं ।

देवों को अमर कहा जाता है क्योंकि मनुष्य की अपेक्षा उनका आयुष्य खूब बडा होता है । न्यूनतम कक्षा के देवता का कम से कम आयुष्य 10,000 वर्ष है और जैसे जैसे ऊपर जाते है वैसे-वैसे देवताओं का आयुष्य बढता जाता है ।

सबसे लंबा 33 सागरोपम का आयुष्य पाँच अनुत्तर में पाँचवें सर्वार्थसिद्ध विमान के देवों का होता है । एक देवता का आयुष्य पूर्ण हो उसके बीच मनुष्य की लाखों, करोड नहीं बल्कि असंख्य पीढियां पूरी हो जाती है ।

देवों को जन्म मात्र से अपार संपत्ति प्राप्त होती है । मनुष्य अपने जीवन भर में मेहनत-मजदूरी कर घर-परिवार के पालन-पोषण जितनी संपत्ति भी मुश्किल से पाता है । जबकि देवों को जन्म से ही अमाप संपत्ति प्राप्त हो जाती है । सामान्य कक्षा के देवता के पैरों में रही मोजडी के एक रत्न की कीमत मनुष्य लोक में रहे सारे धन संपत्ति से भी बढकर होती है ।

देवों का शरीर, मनुष्य के जैसा औदारिक नहीं बल्कि वैक्रिय होता है । उनके शरीर में अशुचि का अंश भी नहीं होता है । **परम पवित्र परमाणुओं से बना उनका शरीर होता है । उन्हें जन्म लेने के लिए मनुष्य की तरह नौ महिनों की गर्भावास की पीडा सहन नहीं करनी पडती है ।**

मात्र औत्पातिक शय्या पर उनका जन्म होता है और अन्तर्मुहूर्त काल मात्र में सभी भोगों का अनुभव कर सके ऐसे नौजवान व्यक्ति के जैसा समर्थ शरीर तैयार हो जाता है । सभी प्रकार के रोगों से रहित उनका शरीर मरण के बाद कपूर के पुद्गलों की तरह हवा में उड जाता है । इसलिए देवलोक में कोई श्मशान-घाट या अस्पताल नहीं है ।

मनुष्य शरीर के विषय भोग की शक्ति खूब मर्यादित है, जबकि देवों की शक्ति अमर्यादित है । मनचाहा रुप करके वह पूरी दुनिया में अपनी कक्षा के अनुसार में आ-जा सकता है । अपने हजारों रुप करके सर्वत्र अपना अस्तित्व और प्रभाव बता सकता है । पलक झपकते ही उनके सारे काम हो जाते हैं ।

पांच इन्द्रियों के सर्वोच्च सुखों में उनका पूरा जीवन कहां प्रसार हो जाता है, कुछ पता ही नहीं चलता । उन्हें जन्म से ही तीन ज्ञान प्राप्त होते हैं । अपना भूतकाल क्या था ? वे किस स्थान से और क्या साधना करके देव बने है ? पूर्व जन्म के परिवार जन और मित्र कहाँ है ? क्या कर रहे है ?

यह सब कुछ वे जान सकते है । तो साथ ही उनका भविष्य क्या होगा ? वह भी वे अपने ज्ञान के द्वारा जान सकते हैं । इसलिए

वे भविष्य की चिंता किये बिना सारी जिंदगी भोग-सुख में व्यतीत करते हैं । वहां देवलोक में एक दिव्य नाटक 2000 वर्ष तक चलता है ।

व्यंतर निकाय, भवनपति, ज्योतिष और वैमानिक के दो देवलोक में जीव देव और देवी-दोनों रुप में पैदा होते है । उनके काम भोग मनुष्य की तरह होते हैं ।

वैमानिक के तीसरे देवलोक से आठवें देवलोक तक देवियाँ जा सकती है । **तीसरे-चौथे देवलोक के देवताओं को देवियों के स्पर्श मात्र से, पांचवे-छठे देवलोक के देवताओं को देवियों के रुप देखने मात्र से सातवें-आठवें देवलोक के देवताओं को देवियों के मात्र शब्द सुनने से और नौवें-दसवें देवलोक के देवताओं को देवियों के विचार मात्र से कामभोग की तृप्ति हो जाती है ।** उसके ऊपर रहे देवताओं को स्त्री के काम भोग की इच्छा ही नहीं होती है ।

सामान्य देवताओं से इन्द्र की शक्ति ज्यादा होती है । सभी इन्द्रों का अलग-अलग परिवार होता है । **हजारों लाखों देवी-देवता एक-एक इन्द्र के परिवार में होते है । एक मात्र प्रथम वैमानिक देवलोक के सौधर्मेन्द्र की बात की जाय तो वे स्वयं 32 लाख विमान और उनमें रहे असंख्य देवताओं के स्वामी है ।** उनके समान ऋद्धि वाले 84 हजार सामानिक देवता, मन्त्री के समान 33 त्रायस्त्रिंशक देवता, सोम, यम, वरुण और कुबेर नाम के चार लोकपाल देवता, 3 पर्षदा, सात सेना और सात सेनाधिपति, 16 हजार आत्मरक्षक देवता आदि सभी ऋद्धि सिद्धि उन्हें जन्म से ही प्राप्त हो जाती है ।

सौधर्म इन्द्र की आठ इन्द्राणियाँ होती है । विषय भोग की उत्कटता से जब उनकी एक-एक इन्द्राणी 8000 रुप करती है । तब इन्द्र स्वयं अपने 64000 रुप करके एक साथ सभी के साथ में रतिक्रिडा के सुख का अनुभव करता है ।

वैमानिक देवों में 12 वें देवलोक तक तो स्वामी-सेवक भाव स्वरुप इन्द्र और उनके सेवक परिवार में अन्य देवता होते है लेकिन नौ ग्रेवेयक

और पांच अनुत्तर देव विमानों के सभी देवता अहमिन्द्र होते हैं । कोई छोटा या बडा नहीं होता । सभी स्वामी, कोई दास नहीं । उन्हें तीर्थंकरों के जन्मादि कल्याणकों के प्रसंगों में मनुष्य लोक में आने की जरुरत नहीं होती है । 20 सागरोपम से लेकर 33 सागरोपम तक के दीर्घकालीन आयुष्य को वे देवता मात्र सुखशय्या में सोते हुए तत्त्वचिंतन में प्रसार करते है ।

सर्वार्थसिद्ध विमान में सुख शय्या के ऊपर के झुमर का वर्णन शास्त्रों में आता है । **उस झूमर में 253 मोतीं होते है । बीच में 64 मण का 1 बडा मोती, उसके चारों ओर क्रमश 32 मण के 4 मोती, 16 मण के 8 मोती, 8 मण के 16 मोती, 4 मण के 32 मोती, 2 मण के 64 मोती और 1 मण के 128 मोती होते है । हवा चलने से ये मोतीं परस्पर टकराते हैं और दिव्य संगीत पैदा करते हैं ।** इस मधुर संगीत को सुनते हुए और तत्त्वचिंतन करते करते 16 ½ सागरोपम एक करवट पर सोते हुए और शेष 16 ½ सागरोपम दूसरी करवट पर सोते हुए पूणे करते है ।

इसी तरह मनुष्य लोक में सर्वश्रेष्ठ भौतिक सुखों की प्राप्ति चक्रवर्ती को होती है । उनकी माता, उनके गर्भ में आने पर 14 महास्वप्न देखती है । उनका जन्म राज परिवार में होता है । युवावस्था में जब वे दिग्विजय के लिए जाते है तब उनके पास देवता अधिष्ठित 14 महारत्न एवं 9 निधान होते हैं ।

उनके 14 महारत्नो में 7 पंचेन्द्रिय और 7 एकेन्द्रिय होते हैं । पुरोहित रत्न, सभापति रत्न, सेनापति रत्न, श्रेष्ठी रत्न, स्त्री रत्न, हस्ती रत्न और अश्व रत्न ये 7 पंचेन्द्रिय होते है और चक्र रत्न, दंड रत्न, खड्गरत्न, सिंहासन रत्न, छत्र रत्न, चर्मरत्न और वार्धकी रत्न ये 7 एकेन्द्रिय होते है । **दिग्विजय की यात्रा में 84 लाख हाथी, 84 लाख घोडें, 84 लाख रथ एवं 96 करोड पैदल सैन्य होता हैं । छह खंड का साम्राज्य जीतने पर वे 96 क्रोड ग्राम के नायक होते हैं । 32000 मुकूटबद्ध राजा उनके सामने सेवक की तरह रहते है । 1 लाख 92**

हजार स्त्रियों के वे स्वामी होते है । मनुष्य के रुप में वे किसी देवता से कम नहीं होते है ।

चक्रवर्ती पणे के सुख का अनुभव करते हुए उनके सर्वोच्च पुण्य के उदय के कारण वे स्वयं मनुष्य होते हुए भी हजारों देवता उनकी सेवा में सदैव हाजिर होते है ।

देवता, इन्द्र और चक्रवर्ती, भौतिक सुखों के सभी प्रकार के साधनों से पूर्ण होने पर भी उनका सुख राग से युक्त होने के कारण वीतरागी के सुख के आगे अंश मात्र भी नहीं है ।

राग कभी अकेला नहीं रहता । वह अपने पूरे परिवार के साथ ही रहता है । राग के पिता है-महामोह, जो जगत् को भ्रमित करता है । राग स्वयं भी जगत् के जीवों को नरक के ताप से भी बढकर वेदना देता है ।

राग का भाई है–द्वेष, जो राग का प्रतिस्पर्धि बनकर जीवों को अपार दुःख देता है । **जहाँ राग होता है, उसके विपरीत परिस्थिति पर अवश्य द्वेष होता है ।** ये राग-द्वेष अलग-अलग रुप धारण करते हैं । प्रशमरति ग्रंथ में इन रुपों के नाम दिये है । इच्छा, मूर्च्छा, काम, स्नेह, ममत्त्व आसक्ति अभिलाषा इन सभी रुपों को धारण करके राग संसारी जीवों को नचाता है ।

ईर्ष्या, रोष, दोष, परनिंदा, मत्सर, असुया, वैर, प्रपंच-इन सभी रुपों को धारण कर द्वेष पूरे जगत् को दुःखी करता है ।

राग के अस्तित्व में जीव को जो कुछ प्राप्त होता है, वह कम ही लगता है । जीव की इच्छाएँ हमेशा अधिकाधिक सामग्री प्राप्त करने की रहती है ।

इस कारण से चाहे देवता हो, इन्द्र हो या चक्रवर्ती भी क्यों न हो सभी किसी न किसी एक इच्छा की अपूर्ति के कारण दुःखी रहते

है । बाह्य सामग्री तो मात्र सुख का साधन है, उससे भी सुख पाना हो तो गुणों का साम्राज्य होना जरुरी है । गुणों के अभाव में चाहे जितने सुख के साधन प्राप्त हो जाय, संपूर्ण सुख तो क्या सुख का अंश भी कोसो दूर ही रहता है ।

भौतिक समृद्धि से परिपूर्ण देवता भी सुखी नहीं है । संसार में सर्वत्र शेर के ऊपर सवाशेर होता है, वैसे ही देवता और इन्द्र में भी ऊँची और नीची कक्षा होती है ।

नीचे रहे देवता अपने से ऊपर रहे देवता और इन्द्र को देखकर मन में ईर्ष्या करते है । अपने ऊपर किसी को सहन नहीं करने की मनोवृत्ति उन्हें सदैव दुःखी करती है ।

कभी-कभी तो वे अपने ऊपर रहे देवता और इन्द्र से युद्ध करने भी तैयार हो जाते है, जिसका एक उदाहरण है सौधर्म इन्द्र पर भवनपति के चमरेन्द्र का उत्पात, जो अनंतकाल में हुआ एक आश्चर्य है ।

अंत में छोटे इन्द्र को बडे इन्द्र से हार खानी पडती है । कई देवताओं को बडे देवता और इन्द्र के सामने ढोल बजाना एवं नाच-गान और नाटक करना पडता है ।

कई देवताओं को स्वयं देवता होने पर भी पशु की आकृति धारण कर इन्द्र आदि बडे देवों के वाहन बनकर आजीवन गुलामी करनी पडती है । कई देवताओं को चक्रवर्ती आदि मनुष्य के अधीन रहना पडता है ।

इन्द्र भी हमेशा सुखी ही होते है, ऐसा नहीं है । देवलोक में देवियों का आयुष्य ज्यादा से ज्यादा 10 पल्योपम होता है और इन्द्र का आयुष्य खूब बडा होता है । **इस कारण से उनकी इन्द्राणियाँ उनके एक जीवन में लाखों बार बदल जाती है ।** मनपसंद इन्द्राणी के मरण के बाद उसका दीर्घ काल तक वियोग एवं नई पैदा हुई इन्द्राणी के साथ Adjustment उनकों भी करता पडता है । **''नारी सब पे भारी''** की

कहावत के अनुसार इन्द्राणी के इशारों पर इन्द्र को भी नाचना पडता है । इन्द्राणी के रुठने पर इन्द्र को उसे मनाना पडता है । ये सब कुछ उनके रागाधीन होने का ही दुष्परिणाम है ।

अपने आयुष्य के छह महिने बाकी रहने पर उन्हें अपने च्यवन (मरण) का ख्याल आ जाता है, जिसे जानकर उनके होश उड जाते हैं । अधिकांश देवता मरकर एकेन्द्रिय में पैदा होते है । पृथ्वी, जल और वनस्पति में अपने आगामी जन्म की दुर्दशा जानकर वे परम दुःखी हो जाते है । देवलोक के दिव्य भोग सुखों की छोडकर अगले भव में अशुचि के स्थान पर पैदा होने की चिंता से देवता भी अति दुःखी हो जाते है ।

चक्रवर्ती को प्राप्त हुआ सारा सुख भी पुण्य की लीला मात्र है । जिस दिन पुण्य पूरा हो जाता है, उस दिन सब कुछ शुन्य हो जाता है । यदि छह खंड के साम्राज्य का त्याग किये बिना उनका मरण होता है तो नियमा उन्हें मरकर सातवीं नरक में जाना पडता है ।

इन सभी प्रकार के राग-द्वेष के बंधन से जो सर्वथा मुक्त हो चूके हैं अथवा जिन्होंने मुक्ति हेतु एक कदम भी उठाया है, वे निःस्पृही और निर्मम साधु भगवंत जो सुख का अनुभव करते है, उसकी तुलना चक्रवर्ती और इन्द्रों के सुखों से भी नहीं हो सकती ।

ज्ञान सार के निःस्पृहता अष्टक में पूज्य महोपाध्याय श्री यशोविजयजी म.सा. कहते है–भूमि पर शयन करनेवाले, भिक्षा के माध्यम से अपना जीवन यापन करनेवाले, जीर्ण-शीर्ण वस्त्र पहनने वाले और जंगलों में रहने वाले साधु के मन में स्पृहा-इच्छा का अभाव होने के कारण चक्रवर्ती से भी अधिक सुख प्राप्त होता है ।

वह सुख है–समताभाव का,

वह सुख है–राग-द्वेष के अभाव का और

वह सुख है आत्म रमणता का । क्या वह आपको पसंद है ?

तत्त्वप्राप्ति दुर्लभ है

यथा यथा कार्यशताऽऽकुलं वै,
कुत्रापि नो विश्रमतीह चित्तम् ।
तथा तथा तत्त्वमिदं दुरापम्,
हृदि स्थितं सारविचार-हीनैः ॥35॥ (उपजाति)

शब्दार्थ

यथा यथा=जैसे जैसे,
कार्यशताऽऽकुलं=सैकडों कार्यों में आकुल,
कुत्रापि=कहीं भी,
नो=नहीं,
विश्रमति=विश्राम पाता है,
इह=यहाँ,
चित्तम्=मन,
तथा-तथा=वैसे-वैसे,
तत्त्व=आत्मिक सुख,
इदं=यह,
दूरापम्=दुर्लभ है,
हृदि=मनमें,
स्थितं=अनुभव किया हुआ,
सारविचार-हीनैः=सार और असार के विवेक से रहित विचार के द्वारा ।

गाथार्थ

जैसे-जैसे सैकडों कार्यों में आकुल मन यहाँ कहीं पर भी विश्राम नहीं पाता है, वैसे-वैसे सार-असार के विवेक का विचार जिसके हृदय में नहीं है ऐसे जीवों को आत्मिक शांति रुप यह तत्त्व प्राप्त होना दुर्लभ है ।

विवेचन

व्यक्ति की मृत्यु के बाद जब मृतक की शोक सभा होती है तब शोक सभा में रहे लोग मृतक के जीवन में रहे अनेक गुणों की प्रशंसा करते है सभी एक प्रार्थना अवश्य करते है– **'मृतक की आत्मा को शांति प्राप्त हो ।'** इसका अर्थ है कि मरने से पहले व्यक्ति के पास दूसरी सारी सम्पत्ति थी, एक मात्र शांति नहीं थी । क्योंकि प्रार्थना उसकी करते है जो नहीं होता है ।

ग्रंथकारश्री वैराग्य रस से भूरपूर इस ग्रंथ के अंतिम श्लोकों के माध्यम से मन की स्थिरता पर खूब भार दे रहे है । वे कहे रहे है–जैसे जैसे व्यक्ति सैकडों कार्यो में व्यस्त रहता है वैसे वैसे मन चंचल बना रहता है, जिस कारण से हीन विचारों में व्यस्त हुए मन में तत्त्व की प्राप्ति होना दुर्लभ है । अतः मन की शांति पाने के लिए निरर्थक प्रवृत्तियों का त्याग करना जरुरी है ।

चार गति रूप इस संसार में परिभ्रमण करती हुई आत्मा को मानसिक शांति की प्राप्ति अत्यंत दुर्लभ है क्योंकि मानसिक शांति का कारण तत्त्वबोध है । तत्त्वबोध होना और भी दुर्लभ है । शांत-सुधारस ग्रंथ में बोधिदुर्लभ भावना में तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के लिए कुछ संयोगों को आवश्यक बताए है । उन संयोगों की प्राप्ति अत्यंत ही दुर्लभ है ।

(1) मनुष्य भव – अनंतानंत जीवराशि में मनुष्य की संख्या अति अल्प है । साधारण वनस्पति काय में जीवों की संख्या अनंत है । देवता, नारक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच, चतुरिन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेऊकाय, वायुकाय और प्रत्येक वनस्पतिकाय में जीवों की संख्या असंख्य है । परंतु सबसे कम मनुष्य है । मनुष्य मात्र ढाई द्वीप में ही पैदा होते है । सभी मनुष्य क्षेत्र में पैदा होनेवाले अधिकतम मनुष्य की संख्या मात्र 29 अंक की है । वह संख्या है–79,22,81,62,51,42,64,33,75,93,54, 39,50,336 इससे अधिक मनुष्य कभी नहीं हो सकते । मनुष्य जन्म पाने के लिए सभी सम्यग्दृष्टि देवता तरसते है । तेउकाय, वायुकाय और साँतवीं नरक के जीवों को छोडकर मनुष्य गति में सभी जीवों के आने के

दरवाजे खुले है । सभी गतियों में प्रति दिन असंख्य जीवों की मृत्यु होती है परंतु उनमें से मनुष्य बनने का सौभाग्य अति अल्प आत्माओं को ही मिलता है, क्योंकि मनुष्य की संख्या अन्य जीवों की अपेक्षा खूब कम है ।

(2) आर्यदेश – वर्तमान में हमे दिखने वाला मनुष्य क्षेत्र से भी नहीं दिखने वाला मनुष्य क्षेत्र खूब बडा है । मनुष्य उत्पत्ति के 101 क्षेत्र में से 30 अकर्मभूमि और 56 अन्तर्द्वीप में तो सर्वथा धर्म का अभाव है । 15 कर्मभूमि में भी 5 महाविदेह क्षेत्र में हमेशा धर्म है परंतु 5 भरत क्षेत्र और 5 ऐरावत क्षेत्र में मात्र 10% काल में धर्म है । **हम जिस भरतक्षेत्र में रहते है, उसमें भी छह खंड के क्षेत्र में मात्र 25½ क्षेत्र ही आर्यदेश है, शेष सभी क्षेत्र अनार्य देश है । मनुष्य जन्म प्राप्त होने के बाद यदि अनार्य देश में जन्म हुआ हो कि जहां मात्र मारो-काटो की ही बात होती है तो वहाँ धर्म तत्त्व तो क्या धर्म शब्द श्रवण भी अशक्य है ।**

(3) सुकुल – आर्य देश में भी कई कुल ऐसे है जिनमें धर्म के कोई संस्कार नहीं होते है । सुकुल में अच्छे संस्कार जन्म से ही प्राप्त होते है और खराब कुलों में वातावरण के कारण ही दुर्जनता के दोष स्वतः प्राप्त होते है । अतः तत्त्व बोध के लिए सुकूल में जन्म प्राप्ति भी आवश्यक है ।

(4) विविदिषा – विविदषा अर्थात् धर्म श्रवण की इच्छा । जीवों को दुनिया की सारी बाते जानने की इच्छा है, परंतु अपने आत्मिक स्वरुप को जानने की इच्छा ही नहीं होती । **देश-विदेश में होने वाली छोटी-बडी सभी खबरों को जानने के लिए व्यक्ति T.V. पर समाचार देखता है, अखबारों को पढता हैं । सोने-चांदी और शेयरबाजार में भावों के उतार चढाव जानकर आश्चर्य करता है ।**

प्रायः करके दुनिया के लोग आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन संज्ञा और परिग्रह संज्ञा के कारण दिन-रात उनके विषयों की प्राप्ति और रक्षण में ही अपना पूरा जीवन व्यतीत करते हैं । व्यापार बढाने और Tax को बचाने के लिए होने वाले Seminar में दिलचस्पी रखते हैं । बचपन से लेकर जीवन के 15-20 साल मात्र व्यावहारिक पढाई के पीछे बीता देते है । बडी-बडी डिग्रियां पाने देश-विदेश के कई क्षेत्रों में यात्रा और आवास

भी करते है । **छोटी-बडी सभी मुश्किलों को हंसते-मुख सहन करते है, परंतु लक्ष्य मात्र अर्थार्जन और उसके द्वारा भौतिक सुख पाना ही रहता है । धर्म के वचन सुनने की इच्छा भी नहीं जगती है ।**

(5) धर्मश्रवण – कदाचित् पूर्वभव के पुण्योदय से धर्मश्रवण की इच्छा पैदा हो जाय तो भी सद्गुरु के पास धर्म शासन के अनुसार धर्मश्रवण प्राप्त होना कठिन है । जीवन में सद्गुरु का सम्पर्क ही नहीं हो पाता है । संसार के भौतिक सम्बंधों के मोह के कारण धर्म श्रवण हेतु सद्गुरु के पास में जाने से भय लगता है । मन में अनेक कुविकल्प पैदा होते है कि गुरु के समीप में जाने पर वे दान देने की प्रेरणा तो नहीं करेंगे ? अथवा अपने मीठे-वचनों से मुझे प्रलोभन बताकर मुझे सारे संसार का त्याग तो नहीं करा देंगे ? अथवा मन के भीतर अभिमान होता है कि, गुरु भगवंत क्या जानते हैं, उनसे ज्यादा ज्ञान तो मुझे भी है । **अथवा मन में एक अवज्ञा का भाव होता है कि साधु-संतों का तो यही धंधा है, वे तो सभी को मौत के प्रसंगों को बताकर लोगों को डराते है और अपने शिष्य बनाने के लिए हम लोगों के घर तोडते है । इससे अच्छा तो उपाश्रय में जाना ही नहीं । ऐसा निर्णय करने के कारण देव-गुरु-धर्म की सामग्री पाने पर भी उससे दूर ही रहते है ।**

कदाचित् उपाश्रय में आकर गुरु के समीप में रहे तो भी प्रवचन नहीं सुनते है । कई ऐसे लोग होते है जो संघ-शासन के सभी कार्य करते हैं, मंदिर निर्माण, उपाश्रय निर्माण आदि शुभ कार्यों में तन-मन और धन का योगदान हैं, परंतु प्रवचन श्रवण से दूर रहते हैं । संघ-शासन के कार्य भी मात्र अपना मान-सम्मान पाने के लिए करते हैं । कदाचित् प्रवचन में हाजरी भी दे तो अपना बहुमान पाने के लिए । प्रवचन के मर्म के समझने के इरादे वाले अति अल्प श्रोता होते हैं ।

(6) सद्बोध प्राप्ति – सद्गुरु के समीप में जाकर कोई धर्मशास्त्रानुसार प्रवचन श्रवण करने पर भी मिथ्यात्व दोष के कारण उनपर श्रद्धा पैदा नहीं होती । **``आत्मा, परलोक, स्वर्ग, नरक ये किसने देखे है ? भगवान को किसने देखा है ? भगवान के जमाने में विज्ञान का इतना विकास**

नहीं हुआ था और आज विज्ञान खूब विकसित हुआ है । आलू-प्याज-पानी-बासी भोजन आदि में कहां कोई जीव दिखते हैं ? स्वर्ग भी यही है और नरक भी यही है । 5 Star Hotel स्वर्ग है और केन्सर की हॉस्पिटल नरक है ।'' ऐसी-ऐसी बाते करके प्रभु के वचनों का उपहास उडाते हैं ।

कदाचित् आत्मा, परलोक आदि के विषयों पर श्रद्धा पैदा हो जाय तो भी दुनिया के प्रवाह और विज्ञान के संशोधनों के कारण अनेक कुशंकाएँ मन में पैदा होती है । सत्य ज्ञान के अभाव में और शंका निवारण न होने से धर्म वचनों पर दृढ श्रद्धा नहीं हो पाती है ।

(7) आचरण – अत्यंत ही दुर्लभ ऐसे परमात्मा के वचनों का श्रवण और उन वचनों पर श्रद्धा पैदा हो जाय तो भी अनादि काल के कु-संस्कारों के कारण आत्मा के छह अंतरंग शत्रु, साधकात्मा को साधना में विक्षेप करते हैं । अतरंग शत्रु –

1) काम – स्व स्त्री अथवा पर स्त्री के विषय में मानसिक विकार भाव पैदा होना काम है । काम वासना की गुलामी चरमशरीरी आत्मा को भी हैरान करती है । पांच इन्द्रियों के अनुकूल विषय भोग की इच्छा के कारण साधकात्मा अपने आत्महित से च्यूत होकर अपने भवभ्रमण को खूब बढा देती है ।

2) क्रोध – अपना अथवा दूसरों का होने वाला नुकसान न देखे बिना विचारे कोप करना, क्रोध है । क्रोध के आवेश में व्यक्ति अंध हो जाता है । उससे विवेक रुपी आँखे बंध हो जाती है । काम की तरह क्रोध भी जीवात्मा को हैरान कर भवभ्रमण बढा देता है । अल्प कालीन क्रोध के कारण साधकात्मा अपने वर्षों के निर्मल चारित्र जीवन को भी हार जाती है ।

3) लोभ – निष्कारण धन का संग्रह करना अथवा दान के योग्य जीवों को अपना धनादि प्रदान न करना लोभ है । दुनिया में भी लोभी व्यक्ति बदनाम होता है । लोभ को सर्वगुण नाशक माना जाता है । लोभ के वशवर्ती जीव के जीवन में माया, झूठ, छल, कपट आदि पापों का प्रवेश हुए बिना नहीं रहता ।

4) मान – किसी के द्वारा दी गई सही सलाह को भी अपने झूठे आग्रह के कारण स्वीकार न करना मान है । मानी व्यक्ति किसी के आगे झुकने तैयार नहीं होता है और अन्य का अपमान करने में क्षणभर भी देरी नहीं करता है ।

5) मद – जाति, कुल, बल, ऐश्वर्य, ज्ञान, लाभ, तप, ऋद्धि आदि प्राप्त हुई शक्तियों का गर्व करना, मद है । इस मद के कारण बडे-बडे साधकों को भी हैरान होना पडा है । व्यक्ति जिसका मद करता है, वह शक्ति उसके लिए अगले जन्म में दुर्लभ हो जाती है ।

6) हर्ष – बिना कारण अन्य जीवों को दु:खी कर मन में खुश होना अथवा जुआँ, शिकार आदि सात व्यसनों का सेवन कर मन में खूश होना हर्ष है ।

इन छह अंतरंग शत्रुओं एवं राग-द्वेष, निद्रा, आलस्य, प्रमाद आदि अनेक कारणों से जीवात्मा के लिए तत्त्वज्ञान की प्राप्ति दुर्लभ हो जाती है । अत: मन की शांति पाने के अभिलाषा हो तो मनुष्य जन्म आदि दुर्लभ सामग्री की महत्ता समझकर प्राप्त हुई इन सामग्रियों का सदुपयोग करके जीवन को आत्मिक विकास की दिशा में ले जाने के लिए प्रयत्नशील बनना चाहिए ।

जीवन के हर क्षेत्र में व्यक्ति स्वत: ही अपनी जिम्मेदारी समझकर अहितकारी प्रवृत्तियों का स्वत: ही त्याग कर देता है परंतु आत्महित के विषय में जीवात्मा अपनी जिम्मेदारी नहीं समझता है । अपनी भौतिक इच्छाओं को पूर्ण करने के पीछे अपना आत्महित भूल जाता है ।

सांसारिक सभी कार्यों में उत्साहित रहता है, जिसके कारण मन कहीं भी स्थिर नहीं होता और सार-असार के विचार रहित इस जीवन में उसे तत्त्वज्ञान की प्राप्ति नहीं हो पाती है । अत: तत्त्व प्राप्ति करने के ध्येय से साधकात्मा को व्यर्थ कार्यों का अवश्य त्याग कर रत्नत्रयी की साधना में विशेष प्रत्यन करना चाहिए ।

समता से परम सुख प्राप्ति

शम-सुख-रस-लेशाद् द्वेष्यतां सम्प्रयाता ।
विविधविषयभोगाऽत्यन्तवाञ्छाविशेषाः ।
परमसुखमिदं यद् भुज्यतेऽन्त समाधौ,
मनसि यदि तदा ते शिष्यते किं वदान्यत् ॥36॥ (मालिनी)

शब्दार्थ

शम-सुख-रस-लेशाद् =समता सुख के आशिक आस्वाद से,
द्वेष्यतां=शत्रु तुल्यभाव को,
सम्प्रयाता=प्राप्त हुई है,
विविधविषयभोगाऽत्यंतवाञ्छविशेषाः= पांच इन्द्रियों के विविध प्रकार के विषय भोग की अति तृष्णा विशेष,
परम सुखं=मोक्ष तुल्य श्रेष्ठ सुख को,
इदं=यह,
यद्=जो,
भुज्यते=अनुभव करते है,
अन्त समाधौ=अंतरंग समाधि,
मनसि=मन में,
यदि=जो,
तदा=तब,
ते=तुम्हें,
शिष्यते=बाकी रहा है,
किं=क्या,
वद=बोलो,
अन्यत्=दूसरा ।

गाथार्थ

हे जीवात्मा ! अनेक प्रकार के पांच इन्द्रियों के विषयों को भोग करने की मन में जो उत्कट इच्छा थी वह, समता सुख के आंशिक आस्वाद से सांसारिक दुःख को बढाने के कारण शत्रु तुल्य लगती है । यदि अंतरंग समाधि से युक्त मन में मोक्ष तुल्य श्रेष्ठ सुख का अनुभव होता तो बोलो, तुम्हें अन्य कौन-से सुख का अनुभव करना बाकी रहता है ?

विवेचन

ग्रंथ के प्रारंभ की तरह ग्रंथ की समाप्ति भी खुब महत्त्वपूर्ण होती है। ग्रंथ का निष्कर्ष उसके अंत में बताया जाता है। जैसे रेलगाडी में ड्रायवर सबसे आगे और गार्ड सबसे पीछे रहता है। गार्ड का स्थान भले ही पीछे हो, परंतु ड्रायवर भी गाडी को गार्ड के ईशारे पर ही चलाता है। वैसे ही प्रस्तुत 36 श्लोक वाले इस छोटे लेकिन मार्मिक ग्रंथ का यह अंतिम श्लोक गार्ड के स्थान पर है। इस श्लोक के द्वारा ग्रंथकारश्री सभी साधना द्वारा प्राप्त करने योग्य लक्ष्य का निर्देश कर रहे है। **वे कहे रहे है-जब क्षणभर के लिए भी समता सुख का आस्वाद होने के कारण, परिणाम में दुःखदायी भौतिक सुखों की भोगेच्छा पर द्वेष पैदा होता है और मोक्ष के आस्वाद समान मन में परम सुख प्राप्त होता है तब तुम्हें अन्य किसी भी सुख के पीछे दौडने की आवश्यकता नहीं है। यह समता का सुख ही मोक्ष प्राप्त कराने वाला है।**

आत्मा का मूल स्वरुप है **''सच्चिदानंद''**। सत् अर्थात् शाश्वत, **चिद्** अर्थात् ज्ञानमय और **आनंद** अर्थात् सुखमय। जगत्वर्ती सभी आत्माओं का शुद्ध स्वरुप **''सच्चिदानंद''** है। इस शुद्ध स्वरुप की प्राप्ति मोक्ष में है।

यह शुद्ध स्वभाव सभी आत्मा में रहा हुआ है। प्रत्येक आत्मा के असंख्य आत्म प्रदेश होते हैं। इनमें से मात्र आठ आत्मप्रदेश सभी आत्माओं के निर्मल है। इन्हें आठ रुचक प्रदेश कहते हैं। इन आठ रुचक प्रदेशों पर कभी कर्मों का लेप नहीं लगता है। इस अपेक्षा से चाहे भव्यात्मा हो या अभव्यात्मा हो, सभी में केवलज्ञान, केवलदर्शन, वीतरागता, अनंतवीर्य आदि गुण सत्ता में रहे हुए है। **फर्क सिर्फ इतना है कि अभव्यात्मा को यह स्वरुप कभी प्रकट होने वाला नहीं है। भव्यात्माएँ सम्यक्त्व आदि गुणों की प्राप्ति करके इस शुद्ध स्वरुप को प्रकट कर सकती हैं। सम्यक्त्व की प्राप्ति के लक्षण है शम, संवेग, निर्वेद, अनुकंपा और आस्तिकता।**

1) शम – शम अर्थात् समताभाव । जगत् के सभी जीवों के प्रति आत्म-तुल्य बुद्धि । स्वयं को प्रिय सुख सभी को प्राप्त हो और स्वयं को अप्रिय दुःख किसी को भी प्राप्त न हो । इस मनोदशा के साथ जगत् के किसी भी जीवों के साथ शत्रुता का भाव न होना । अपना बुरा करने वाले के प्रति भी मन से भी बुरा विचार न करने की भूमिका शम है ।

2) संवेग – संवेग अर्थात् मोक्ष सुख की अभिलाषा । देव और मनुष्य के सारे सुख क्षणिक है, पुण्य के अधीन है, मात्र दुःख प्रतिकार स्वरुप है और पाप कर्म के बंधन का कारण है । अतः इन दोषों के कारण समकिती के मन में संसार के भौतिक सुख का कोई आकर्षण नहीं होता । उसे तो एक मात्र मोक्ष सुख को पाने की तीव्र अभिलाषा होती है ।

3) निर्वेद – निर्वेद अर्थात् संसार के प्रति कंटाला । संसार में जीवों को चार गतियों में निरंतर परिभ्रमण करना पडता है । कर्मों के बंधन के कारण जीव को कभी राजा, चक्रवर्ती देवता और इन्द्र के भौतिक सुख प्राप्त होते है तो कभी दासत्व, दरिद्रता, नरक और तिर्यंच के मरणांत दुःख प्राप्त होते है । इस कारण से समकिती को इस असार संसार के प्रतिउद्वेग भाव होता है ।

4) अनुकंपा – दुःखी जीव को देखकर हृदय में कंपन होगा । अनुकंपा के दो प्रकार i) धन, स्वजन, स्वास्थ्य, जीवनोपयोगी आवश्यक सामग्री से हीन जीवों को देखकर उनके दुःख में स्वयं दुःखी होना वह द्रव्य अनुकंपा है । ii) धर्महीन व्यक्ति चाहे वह चक्रवर्ती हो, राजा हो या इन्द्र हो, उनके भावी भवभ्रमण को देखकर दया करना वह भाव अनुकंपा है ।

5) आस्तिकता – आत्मा, स्वर्ग, नरक, मोक्ष, पुण्य-पाप, कर्म और धर्मसत्ता के अस्तित्व का स्वीकार करना । इन पदार्थों का वास्तविक स्वरुप बताने वाले तीर्थंकर परमात्मा को देव के रुप में स्वीकार करना । कंचन कामिनी के त्यागी, पंचमहाव्रतधारी और तीर्थंकर के द्वारा बताए मोक्ष मार्ग के प्रदर्शक सुसाधु को गुरू के रुप में स्वीकार करना एवं दया प्रधान तीर्थंकर प्ररुपित धर्म को धर्म के रुप में स्वीकार करना ।

सम्यक्त्व के इन पांच लक्षणों से जीव में रहे सम्यक्त्व को पहचाना जा सकता है । इनकी प्राप्ति का क्रम इनके ऊपर निर्दिष्ट क्रम से विपरित है–अर्थात् सबसे पहले आस्तिकता, फिर अनुकंपा, फिर निर्वेद, फिर संवेग और अंत में शम गुण प्राप्त होता है । यह शम गुण आत्मा के भीतर अन्य गुणों को लोहचुंबक की तरह खींचकर आत्मा को समग्र गुणों का भण्डार बनाता है ।

इलाची पुत्र

इलावर्धन नगर में धनदत्त नाम के नगरसेठ थे । दाम्पत्य जीवन के कई वर्ष बीतने पर भी उन्हें कोई संतान नहीं थी । इलादेव की मन्नत के द्वारा उन्हे पुत्र प्राप्त हुआ । अतः उस पुत्र का नाम इलाचीकुमार रखा । कालक्रम से यौवनवय में प्रवेश किया । एक बार उस नगर में एक नट मंडली का आगमन हुआ । सभी नगरजन उस नाटक को देखने गये । नाटक में विविध हाव-भावपूर्वक नृत्य करती नटकन्या सभी के आकर्षण का केन्द्र बनी थी ।

चारों ओर नट मंडली की प्रशंसा होने लगी, विशेष रुप से नटकन्या की । धनदत्त सेठ भी अपने परिवार के साथ नाटक देखने गया । नाटक में नटकन्या के नृत्य को देखकर पूर्वजन्म के संबंध के कारण इलाचीकुमार उस पर मोहित हो गया । घर जाने के बाद भी उसे चारों ओर वह नट कन्या ही दिखने लगी । **प्रेम के प्रकर्ष में वह अपने सारे दैनिक कार्य को छोडकर नटकन्या को पाने के लिए पागल-सा बन गया । उसने नटकन्या को अपनी पत्नी बनाने का निश्चय किया । उसने नट कन्या के पिता लंखिकर से नट कन्या की मांग की ।**

इलाची कुमार की बात सुनकर लखिकर ने सोचा, **'यदि कन्या इसे सौप दूंगा तो हमारी नट मंडली में नर्तकी की कमी हो जाएगी ।'** अतः पहले तो उसने स्पष्ट इन्कार कर दिया । खूब आग्रह करने पर उसने एक बीच का रास्ता निकाला । उसने कहा, **``यदि तुम हमारे साथ**

रहकर नट कला सीखोंगे और राजा से इनाम प्राप्त करोंगें तो मैं तुम्हे अपनी कन्या देने के लिए तैयार हूँ ।'' मोहवश होकर इलाची कुमार अपने कुल की मर्यादा और अपने पिता की इज्जत को छोडकर नट मंडली में जुड गया ।

नटकला सीखकर इलाचीकुमार अलग-अलग गांव-नगरों में घुमने लगा । वह नट मंडली के साथ नाचते हुए लोगों को आकर्षित करने लगा । लम्बी और ऊँची डोरियों पर चढकर छलांग लगाना, आग से खेलना, चाकू और तलवार की धार पर चलना आदि अनेक करतब करता रहता । एक नटकन्या के पीछे पागल बने श्रेष्ठी पुत्र इलाची कुमार को, कन्या के पिता को मनाते हुए बारह वर्ष बीत गए ।

राजा को रीझाने के लिए एक बार राजमहल के पास नाट्य मंडली का आयोजन हुआ । स्वयं राजा अपने पूरे परिवार के साथ नाटक देखने आया । इलाची कुमार उस नटकन्या के ढोल की ताल पर डोरी पर चढते हुए करतब करने लगा । अत्यंत आश्चर्य करनेवाले करतब देखते देखते राजा की नजर नटकन्या के रुप पर पडी । राजा नटकन्या के रुप पर मोहित हो गया ।

मंत्री से बात करने पर उसे नटकन्या के पिता की शर्त के बारे में पता चला । अब जब करतब पुरा कर इलाचीकुमार ईनाम की प्रार्थना करता, तब राजा बहाने बनाने लगा । कभी नींद का, कभी सिरदर्द का, तो कभी ध्यान भटकने का बहना बनाते हुए राजा इलाचीकुमार की मौत की राह देखने लगा ।

वह सोच रहा था कि–यदि डोरी पर नाचते-नाचते यह नीचे गिर जाय तो नटकन्या को मैं अपनी पत्नी बना सकूंगा ।

इस ओर बार-बार करतब करने पर भी राजा को खुश करने के लिए नटकन्या इलाचीकुमार को प्रोत्साहित करती रहती । तीन बार प्रयत्न निष्फल गए । अब चौथी बार का प्रयत्न था । राजा की नजर नटकन्या पर

देखकर उसे राजा की मनोदशा का ख्याल आ गया । इस बीच इलाचीकुमार की भाग्यदशा ने पलटा खाया । डोरी पर नाचते-नाचते उसने एक दृश्य देखा । पास रही हवेली में एक रुपवती पद्मिनी स्त्री किसी नौजवान साधु को गोचरी बहोरा रही थी । आग्रह करने पर भी साधु भगवंत उसकी ओर देखे बिना, नीची नजर करते हुए इन्कार कर रहे थे ।

यह दृश्य देखकर इलाचीकुमार विचार करने लगा **'अहो ! मैं क्या कर रहा हूँ । एक नटकन्या के पीछे पागल बनकर मैं अपने कुल की इज्जत की परवाह किये बिना डोरी पर नाच रहा हूँ । जिसके प्रति मैं मोहित बना हूँ, उसे पाने के लिए राजा मेरी मौत की राह देख रहा है । धिक्कार है मुझे और धन्य है इन साधु भगवंत को । एकांत स्थान है, रुपवती स्त्री है, कामोत्तेजक भोजन है और युवावय है, सभी संयोग अनुकुल होने पर भी ये महात्मा सभी भोग सुखों से निर्लेप है । धन्य है इनका जीवन, अधम है मेरा जीवन ।'**

इस विचारधारा से एक मानसिक आन्दोलन पैदा हुआ । सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई । आस्तिकता, अनुकंपा, निर्वेद, संवेग और शम गुणों के समुह ने ऐसा चमत्कार किया कि उसे स्वयं के विषय भोगों पर द्वेष पैदा होने लगा । भोग की रसधारा अब कीचड की गंदी गट्टर लगने लगी । विषय की इच्छा अत्यंत दु:खदायी लगने लगी । इन्द्रिय की पराधीनात जेल की कैद और फांसी के फंदे जैसी लगने लगी । नटकन्या का देह उसे मल-मूत्र आदि अशुचि से भरा गंदगी का कंकाल दिखने लगा । शम रस का प्रवाह ऐसा बहा–कि सभी पापों का मैल धूल गया । **भावधारा ने ऐसी ऊँचाई स्पर्श की, कि भीतर में भाव चारित्र प्रकट हुआ । क्षपकश्रेणी पर चढना शुरु हुआ । एक ऐसी ध्यानाग्नि जलने लगी जिसने उसके सभी घाति कर्मो का क्षय कर दिया ।**

डोरी पर नाचते-नाचते इलाचीकुमार को केवलज्ञान प्रकट हो गया । देवताओं ने आकर उन पर पुष्पवृष्टि की । साधुवेष अर्पण कर केवलज्ञान का महोत्सव किया । पृथ्वीतल पर विचरण कर उन्होंने अनेक

जीवों को प्रतिबोध दिया । अंत में आयुष्य पूर्ण कर वे मोक्ष में चले गए । यह सारी कमाल है–समता सुख की ।

हमारे जीवन की साधना का लक्ष्य समता को पाना होना चाहिए । जीवन में समता आने के बाद–ज्ञानदृष्टि का प्रकाश होता है और ध्यान सृष्टि में प्रवेश होता है ।

बोध में सूक्ष्मता आती है और प्रतिबोध की सक्षमता आती है ।

साक्षी भाव का बसंत आता है और कर्तृत्वभाव का अंत आता है ।

विषयों का संग्रह दूर होता है और विकल्पों का आग्रह दूर होता है ।

पूर्णता पाने की इच्छा होती है और इच्छा की पूर्णता का सुख होता है । धर्मराजा का सूर्योदय होता है और कर्मराजा का सूर्यास्त होता है ।

अव्यवस्था में गंभीरता और हर अवस्था में स्थिरता आती है ।

जीवन का स्वीकार होता है और जीवों का सत्कार होता है ।

जानने का अंत आता है और देखने का आनंद रहता है ।

रत्नत्रयी का भाव रहता है और तत्त्वत्रयी पर अहोभाव होता है ।

वृत्ति में रंज नहीं रहता और प्रवृत्ति में शतरंज का खेल नहीं रहता है ।

चित्तवृत्ति लय पाती है और विकृति विलय पाती है ।

अशुभ कर्मों का संवर होता है और शुभ कर्मों का स्वयंवर होता है । मात्र उपस्थिति असर करती है और परिस्थिति की असर दूर होती है । जीवों की निंदा चली जाती है और जड पदार्थ की स्पृहा चली जाती है ।

ऐसी समता की प्राप्ति जगत् के सभी जीव प्राप्त कर मोक्ष में जाए यह ग्रंथकारश्री का अंतिम प्रेरणा है ।

प्रस्तुत ग्रंथ के विवेचन में ग्रंथकार के आशय एवं जिनाज्ञा के विरुद्ध कुछ भी लिखा गया हो तो मिच्छा-मि-दुक्कडम् ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर, मरुधररत्न,
पू.आ. श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**
द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित **272** पुस्तकों
में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	Pearls of Preaching	60/-	38.	विविध देववंदन	100/-
2.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	39.	नवतत्त्व विवेचन	110/-
3.	अमृत रस का प्याला	300/-	40.	लघु संग्रहणी	140/-
4.	ध्यान साधना	40/-	41.	समाधि की साधना	300/-
5.	शंका समाधान (भाग-5)	160/-	42.	New Message for a New Day	600/-
6.	शत्रुंजय यात्रा	40/-	43.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
7.	शत्रुंजय की भाव यात्रा	230/-	44.	इन्द्रिय पराजय शतक	150/-
8.	आओ संस्कृत सीखें भाग-2	400/-	45.	दूसरा कर्मग्रन्थ	55/-
9.	दंडक सूत्र विवेचन	90/-	46.	तीसरा कर्मग्रन्थ	90/-
10.	प्रवचन का अमृत	200/-	47.	चौथा कर्मग्रन्थ	140/-
11.	पर्युषण अष्टानिका प्रवचन	120/-	48.	पाँचवाँ कर्मग्रन्थ	160/-
12.	गणधर-संवाद	80/-	49.	छठा-कर्मग्रन्थ	210/-
13.	आओ ! उपधान पौषध करें !	130/-	50.	नित्य देववंदन	निशुल्क
14.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-	51.	संबोह-सित्तरि (वैराग्य का अमृत कुंभ)	160/-
15.	संस्मरण	50/-	52.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम् (भाग:-1)	1170/-
16.	आध्यात्मिक पत्र	60/-	53.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम् (भाग:-2)	1040/-
17.	चिंतन का अमृत कुंभ	80/-	54.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम् (भाग:-3)	900/-
18.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-1)	210/-	55.	श्री सिद्धहेमचन्द्र-शब्दानुशासनम् (भाग:-4)	1270/-
19.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-2)	220/-	56.	श्री भद्रंकर प्रश्नोत्तरी	170/-
20.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-3)	125/-	57.	अध्यात्मयोगी से प्रश्नोत्तर	160/-
21.	पंच-प्रतिक्रमण सूत्र (भाग-4)	135/-	58.	योग की आठ दृष्टियाँ	430/-
22.	विवेकी बनो	90/-	59.	10 श्रमण-धर्म	250/-
23.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	200/-	60.	साचा माणस बनीए ! (गुजराती)	300/-
24.	प्रवचन-वर्षा	60/-	61.	शुभ-संदेश	250/-
25.	आओ श्रावक बनें !	25/-	62.	भक्ति से मुक्ति	200/-
26.	व्यसन-मुक्ति	100/-	63.	सहनशील बनों (22 परीषह)	180/-
27.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	64.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	350/-
28.	महावीर प्रभु की पट्टधर परंपरा 58-80	280/-	65.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	300/-
29.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-	66.	नवकार-प्रवचन	180/-
30.	समाधि मृत्यु	80/-	67.	जीवन-प्रसंग	360/-
31.	तीन भाष्य	150/-	68.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-
32.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	200/-	69.	समाधि मृत्यु	80/-
33.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-	70.	पर्युषण अष्टाह्निका प्रवचन	120/-
34.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-	71.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-
35.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-	72.	श्रमण-हितशिक्षा	250/-
36.	कोयंबत्तुर-प्रवचन	150/-	73.	हृदय प्रदीप (भाग-1)	260/-
37.	दक्षिण भारत प्रवचन	160/-	74.	हृदय प्रदीप (भाग-2)	260/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. M. 84 84 84 84 51 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S
M. 9820530299